आत्म कथा

अर्थात्

देव समाज स्थापक की जूबिली ऐड्रेस

जो

पौष वदि प्रतिपदा संवत् २०६४ विक्रमी को उनके महाव्रत

ग्रहण सम्बन्धी रौपक जूबिली महोत्सव पर लाहौर में पढ़ी गई थी।

ATMA –KATHA

BEING

AN ADDRESS BY THE FOUNDER OF DEV SAMAJ

READ

On the occasion of Silver jubilee

celebration of his Great Vow

AT

LAHORE

On 20th, December 1907

आत्म कथा

1- विषय प्रवेश

आज मेरा जन्म दिन है। आज हि के दिन, परन्तु आज से सत्तावन वर्ष पहले, मेरा जन्म हुआ था। आज हि के दिन परन्तु आज से पच्चीस वर्ष पहले, मैंने अपना महा अथवा जीवनव्रत ग्रहण किया था। आज हि मेरी उमर का अट्ठावनवां साल आरम्भ होता है। यह महोत्सव भी मेरे इसी जन्म दिन के उपलक्ष्य में है। और जैसे आज से सत्तावन वर्ष पहले मैंने 20 दिसम्बर पौषवदि प्रतिपदा को शुक्रवार के दिन जन्म लिया था, वैसे हि सत्तावन वर्ष के बाद आज भी पौषवदि प्रतिपदा और 20 दिसम्बर और शुक्रवार का हि दिन है। मेरे इस विशेष जन्मोत्सव के दिन, क्या मेरे सुनाने के लिए, और क्या तुम सब के सुन्ने के लिए,मेरी आत्म-कथा से बढ़कर और कोई अनुकूल और प्रिय वस्तु नहीं हो सकती। इसलिए क्या मैं अपनी और क्या तुम सब की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए, पहले ऐसे हि कितने और वार्षिक अवसरों की तरह, आज भी अपनी आत्मकथा को हि सुनाना चाहता हूं। इसमें इतना फर्क जरुर होगा, कि इससे पहले, मै इस किसम का वर्णन जबानी करता रहा हूं, परन्तु इस दफा मेरा रोगी गला, ऊंची आवाज के साथ, मुझे इस कदर बोलने की इजाजत नही देता। अतएव इस अवसर के लिए मैंने जो यह ऐड्रेस लिखकर तैयार की है, उसे मेरे एक सेवक मेरी तरफ से पढ़कर सुनाएंगे। ऐसा करने से यद्यपि मेरे खास मुख से तुम इस ऐड्रेस को न सुन सकोगे; और सम्भवत: मैं आप बोल कर अपने शब्दों के द्वारा, अपने जिस कदर आन्तरिक नाना उच्च भावों को तुम तक अधिक मात्रा में पहुंचा सकता, उसमें कहीं कहीं अन्तर आ जाएगा; परन्तु यों यह ऐड्रेस जब कि मेरे हि अपने भावों, और उनके प्रकाश करने वाले शब्दों में रची जाकर लिखी गई है, तब वह शब्द जहां तक मेरी अपनी शक्ति से भर कर निकले है, वहां तक कम या

ज्यादह, वह तुम सब तक जरुर मेरा प्रभाव पहुंचाएंगे, और तुम कुछ बहुत घाटे में न रहोगे। इसके भिन्न, जबकि ऐसे ही अवसरों की कई बार की ऐड्रेस लिपिबद्ध न होने के कारण, कुछ देर के लिए तुम्हारे दिलों पर अपना अपना असर डालकर गायब हो गई, और फिर क्या तुम्हारे और क्या औरों के काम नहीं आ सकीं, और स्थाई चीज नही बन सकी; तब उनकी तुलना में मेरी यह लिखी हुई ऐड्रेस इस समय तुम सब के लिए, जहां तक सम्भव हो, प्रभावप्रद होने के भिन्न, आयंदा भी तुम्हारे और अन्य जनों के लिए, पाठ और प्रभाव लाभ करने की चीज रह सकती है।

विषय प्रवेश के इन थोड़े से शब्दों के बाद, अब मैं अपनी आत्म-कथा आरम्भ करता हूं।

2-जीवनव्रत ग्रहण

पौष वदि प्रतिपदा संवत् 1907 विक्रमी अर्थात् 20 दिसम्बर सन् 1850 ई. को, शुक्रवार के दिन प्रात: काल सूर्योदय के समय कसबा अकबरपुर जिला कानपुर में मेरा जन्म हुआ। इस पृथिवी के विकासक्रम में मेरी गर्भजात बहुत बड़ी विशेषता थी। मै देव जीवन सम्बन्धी, जिन निराली और महान शक्तियों को बीजरुप में पाकर आविर्भूत हुआ था; वह मेरी आयु की उन्नति के साथ साथ अपने लिए विकासकारी घटनाओं को प्राप्त होकर धीरे-धीरे प्रस्फुटित और उन्नत होने लगी। सत्य और असत्य, हित और अहित विषयक विवेकों की उत्पत्ति के अनन्तर मेरे हृदय में एक ओर सत्य और हित के लिए आकर्षण, और दूसरी ओर असत्य और अहित के प्रति विकर्षण उत्पन्न हुआ। यह आकर्षण और विकर्षण भी क्रम क्रम से उन्नत होने लगा, और नाना अनुराग और विराग शक्तियों में परिणत हो गया। बत्तीस वर्ष की आयु से पहले हि मेरे हृदय में यह सत्य और हित अनुराग विषयक बहुत से अंग विकशित हो चुके थे। इन नाना अनुराग शक्तियों के साथ साथ उनकी विरोधी नाना विराग शक्तियां भी पैदा हो गई थी। इन सब देवशक्तियों के विकाश से मेरा यह देवजीवन अन्य करोड़ों आत्माओं से जो इन शक्तियों से शून्य थे, बिलकुल निराला बन गया था। मै अपनी इन सब शक्तियों के विचार से उन सब से विशेषता रखता था- मैं उन सब से अलग और एक निराले प्रकार का आत्मा था। यद्यपि मनुष्यों में रहकर, मैं उनके साथ अपना उचित सम्बन्ध अवश्य अनुभव करता था, परन्तु मैं, अपने देव जीवन की निराली उच्च गतियों के विरुद्ध, उनकी नीच गतियों को देखकर, अपने हृदय में बहुत आघात और कलेश पाता था। नीच आत्माओं की

यह नीच प्रकृति मुझे बहुत बुरी और घिनौती मालूम होती थी, और इसलिए किसी आवश्यक काम काज के भिन्न जहां तक हो, मैं उनकी संगत से परे और उनसे दूर २ रहता था।

मैं प्रायः २३ साल की उमर में लाहौर में आ गया था। यहां पर स्कूल के घण्टों में पढ़ाने के कार्य के भिन्न, मैं अपना और समय, अध्ययन और विचार करने, लेख लिखने, सत् उपदेश देने, और अन्य कई प्रकार के हित कर कामों में, खर्च किया करता था। गिनती के कछ जनों के भिन्न मैं प्राय: और नाना प्रकार के लोगों से, चाहे वह किसी दर्जे के हों, कोई मेल मुलाकात नहीं रखता था। और जिनसे कुछ वाक़फियत भी थी, उनमें से भी, अपेक्षाकृत एक दो भले जनों के भिन्न, किसी से कुछ अधिक लगाव न था। मेरी प्रकृति कुछ और थी, अन्य नाना लोगों की कुछ और !! फिर मेल क्योंकर हो ? इसलिए नहीं हुआ।जिनसे कभी कुछ मामूली ताल्लुक भी हुआ, वह भी कुछ २ काल के बाद एक वा दूसरे कारण से चला गया।

"ईश्वर" नामक कल्पित पुरुष में मेरा उस समय बहुत गहरा विश्वास था। मैं अपने इस विश्वास के अनुसार, उसे, सत्य शिव और सुन्दर रूप मान कर, उसकी उपासना किया करता था । मुझ में सत्य और हित विषयक जिन अद्वितीय अनुरागों का विकाश हुआ था, उनके कारण, मैं स्वाभावतः इस पुरुष का धीरे २ बहुत गहरा अनुरागी अर्थात् भक्त बन गया था।

परहित साधन विषयक नाना अनुरागों के विकाश से यद्यपि नौकरी से कुछ घंटों के भिन्न मैं अपना कार्यगत सब समय नाना परोपकार के कामों में हि ख़र्च करता था, फिर भी धीरे २ मुझ पर इस अनुराग का इतना अधिकार बढ़ गया, कि मेरे हृदय में बीच २ में, यह प्रेरणा उत्पन्न होती, कि मैं सरकारी नौकरी के बन्धन को तोड़ कर पूर्णतः इसी उपकार के काम में अपना सारा जीवन भेंट कर दूं।

एक बार, शायद सन् 1879 या 80 में, मैं अपने घर में मिस मेरी कारपेंटर के उपकार भाव का कुछ हाल पढ़ रहा था। यह मिस इंगलैंड की रहने वाली थीं। इंगलैंड में जो लड़के किसी अपराध में कैद होकर जेल में दुष्ट स्वभाव प्राप्त बड़ी उमर के अपराधियों के साथ रक्खे जाते, उनकी धुरी संगत से उन्हें बहुत हानी पहुंचती थी। लाखों जनों ने कभी इस बुराई को अनुभव न किया, क्योंकि उनके हृदय इस बुराई के अनुभव करने की योग्यता न रखते थे, परन्तु मिस कारपेंटर के विशेष हृदय ने उसे अनुभव किया । उनका हृदय इस बुराई को देखकर बिल-बिला उठा और बहुत जोर से प्रेरणा करने लगा, कि तुम उठो और उसके दूर करने के लिए संग्राम करो। उन्होंने विवश ऐसा हि किया। वर्षों के लगातार संग्राम के बाद, उन्हें इस कार्य में सफलता हुई। गवर्नमेंट ने उनकी बात को मान लिया। पुराने कैदियों के साथ लड़के का नव युवक कैदियों का रक्खा जाना बन्द किया गया। उनके बुरे असरों से उन्हें अलग रखने का प्रबन्ध हो

गया।

इंगलैंड में कामयाबी हासिल करने के बाद उन्होंने भारतवर्ष के जेलखानो में भी, इसी प्रकार के संशोधन के लिए प्रयत्न करना शुरू किया। वह इस अभिप्राय से कई बार इस देश में आई । अन्त में बहुत दिनों के बाद यहां पर भी उनका परिश्रम सफल हुआ। कहा जाता है कि जिन दिनों राजा राममोहन राय अपनी विलायत यात्रा में इनके पिता के घर में ठहरे हुए थे, उन दिनों यह युवा अवस्था में थीं। और इनका सुन्दर हृदय राममोहन की ओर इतना आकृष्ट हो गया था, कि उनके संग विवाह करने की पूर्णत: इच्छुक बन चुकी थीं।परन्तु इस बात के मालूम होने पर कि वह पहले से हि विवाहित और सस्त्रीक हैं, उनकी यह आकांक्षा पूर्ण न हो सकी। इस पर उन्होने, सारी उमर के लिए, कुमार व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की और यह इच्छा की, कि जिस देश के भद्र निवासी से विवाह सूत्र में बन्धकर उसके लिए सेवाकारी नहीं बन सकीं, उसके उस देश के लिए हि, जहां तक सम्भव हो, सेवाकारी बनेंगी। इसी शुभ व्रत को ग्रहण करके वह इस देश में कई बार आईं, और इसी शुभ भाव से परिचालित होकर उन्होंने लंडन में "नेशनल इण्डियन ऐसोसियेशन" नामक एक सोसायटी स्थापन की, कि जिसका उद्देश्य भारत की स्त्रियों में विद्या प्रचार और भारतवासियों और यूरोपियन लोगों में मेल जोल पैदा करना था। तब से यह सोसायटी बराबर जिन्दा है । भारत में भी उसकी कई शाखाएं हैं और उसके द्वारा हर साल कुछ न कुछ शुभ काम होता रहता है। राम मोहनराय के सम्बन्ध में इस कहानी की कुछ असलियत हो वा कुछ न हो, परन्तु इस कहानी का दूसरा अंश तो बिलकुल सच है, अर्थात् मिस कारपेंटर ने, परोपकार के सात्विक भाव से परिचालित होकर जेल के संशोधन के लिए वर्षों तक काम किया है, और उपरोक्त हितकर सभा भी स्थापन की है।

जब उनका वृत्तान्त पढ़ते २,परोपकार भाव की सुन्दर छवि, और वह भी मेरे इन्डिया के सम्बन्ध में उनकी सुन्दर छवि, मेरे में सन्मुख आई तब उसी समय मेरा हृदय उछल पड़ा। मैं अपने इस आन्तरिक उच्च भाव के वेग से विवश होकर चिल्ला उठा, और व्याकुल होकर जोर २ से रोने लगा। है! विदेशी मेरे देश की किसी बुराई को अनुभव करे , वह उसके लिए उछले, वह उसे हजारों मीलों का सफ़र करके यहां बार २ आने और परिश्रम करने के लिए मजबूर करे; और खुद इन्डियन, नीच बनते २ और अधोगति होते २, अपने हि नाना प्रकार के भले और बुरे से बेसुध रहें ! ओह ! कैसा हृदय विदारक दृश्य !!

इस दृश्य ने मेरे हृदय में बहुत बड़ा आघात लगाया । मेरा पर हित अनुराग कुछ और बढ़ गया । तब से

मेरे भीतर अपने देश के लिए अपने आपको भेंट करने का भाव कुछ और अधिक हो गया। सन् 1880 ई० के अन्त में एक बहुत बड़ी दुर्घटना हुई । इस जगत में मेरी प्रतिज्ञाबद्ध, सदा की साथी, हमदर्द, दु:ख सुख में सहायक और सेवाकारी, मेरी प्रिय पत्नी और मेरी सहधम्मिणी का देहान्त हो गया ! कितनी बड़ी हानि ! ! उच्चजीवन के मझ निराले और अकेले मुसाफ़िर के लिए एक हि ऐसे साथी, और सहाय,धैर्य और उत्साह प्रदाता से बिछड़ जाना कैसी दु:खदाई और हताश करने वाली घटना !! इस महा भयानक आघात से कुछ काल के लिए मेरा दिल बहुत दुखी रहा ! परन्तु आखिरकार, धीरे २ मेरी धर्मशक्तियों ने फिर अपना प्रबल अधिकार लाभ किया । सन् 1881 में एक वर्ष की छुट्टी लेकर मैं प्राय: आठ वा नौ महीने लाहौर से बाहर रहा। नवम्बर सन् 81 ई० में मैंने दूसरा विवाह किया। विवाह के अनन्तर मैंने फिर नौकरी का काम आरम्भ किया। सन् 82 में मेरे हृदय में फिर वही प्रेरणा आरम्भ हुई। इस प्रेरणा को बढ़ाने वाली अनुकूल घटनाएं पैदा होने लगीं । इस साल मैंने जो पुस्तकें पढ़ीं, उनमें से एक महात्मा बुद्ध का जीवनचरित था। उसके पढ़ने से, यह प्रेरणा, कुछ और भी अधिक हो गई। इसके प्रबल होने से मेरे हृदय में एक संग्राम उत्पन्न हो गया। एक ओर लोगों की अति पतित कुसंस्कार और पाप ग्रस्त और महा शोचनीय अवस्था मेरे सन्मुख थी, जिसे देखकर मेरा प्रबल हित भाव,मुझे आंदोलित करके मेरे भीतर यह प्रेरणा करता था, कि तुम स्कूल मास्टर रहने के लिए नहीं, किन्तु किसी और महत् काम के लिए हो —दूसरी ओर अन्य कई भाव
कार्य करते थे :-

(१) मेरी 150 महीने की नौकरी थी; और सम्बन्धियों को छोड़कर मेरी पत्नी और मेरे तीन बच्चे थे, कि जिनके भरण पोषण और शिक्षा आदि, सब प्रकार के खर्च का, मुझ **अकेले** पर हि बोझा था । नौकरी के त्याग करने पर इनका क्या होगा ?

(२) आत्म सन्मान का भाव बार २ यह कहता था, कि तुम अपने, वा अपने पारिवारिक जनों के लिए, किसी से अपने मुंह से कुछ दान भी नहीं मांग सकते।

(३) इस देश में जिस प्रकार के लाखों कहलाने वाले "साधु" फिरते हैं, उस प्रकार के साधुओं जैसा तुम न कोई उद्देश्य वा लक्ष्य रखते हो, न उनका सा आत्मिक जीवन रखते हो, न उनकी सी दैनिक जीवन यात्रा रखते हो, न उनकी तरह नाना सम्बन्ध और नाना सम्बन्ध-जनित कर्तव्य विहीन अवस्था को धर्म समझते हो, न उनका सा शास्त्र विश्वास रखते हो, न उनकी तरह रहना या कार्य करना चाहते हो—ऐसी अवस्था में तुम्हें कौन पूछेगा ?—साधारण जन तुम पर कब श्रद्धा करेंगे ?

(४) तुम्हारा धर्म मार्ग निराला तुम्हारा त्याग निराला, तुम्हारा लक्ष्य निराला, तुम्हारा कार्य निराला फिर तुम यह सब कुछ निरालापन रखकर अपने देश वासियों से (जो तुम्हें घृणा करेंगे) अच्छे सलूक, वा किसी उचित सहाय की क्योंकर आशा कर सकते हो ? तुम्हारी इस निराली गति के कारण कितने हि लोग तो, तुम्हारे पहले से हि सख्त विरोधी बने हुए हैं अन्य ईश्वरवादियों को छोड़कर तुम्हारी अपनी समाज के कई ईश्वरोपासक तक तुम्हारे विरोधी हैं ।

परन्तु पहली प्रेरणा की तुलना में यह पिछली प्रेरणाएं कुछ बहुत वजन न रखती थीं। क्योंकि, मुझमें सत्य और हित विषयक, जो नाना अनुराग विकशित हुए थे, उनके विकाश के रास्ते में, इस्से पहले कभी कोई वासना वा उत्तेजना, वा अहं वा संस्कार शक्ति पूर्णत: रोक नहीं बन सकी- यद्यपि कोई २ विरोधी अवश्य बनी । फिर यह संग्राम किस लिए था ? इस लिए कि मैं इस समय तक भलीभात यह निर्णय नहीं कर सका था, कि मुझ में जिस आत्मत्याग के व्रत ग्रहण करने की प्रेरणा होती है, वह जरूर मेरे उन्हीं ईश्वर की तरफ़ से है कि जिनका मैं पूर्ण भक्त होकर उनके आदेश पालन के लिए बाध्य हूं । इसके भिन्न दो और बहुत बड़ी कठिनाइयां थीं—पहली यह कि मैं अपने हृदय के इस संग्राम को किसी और के सन्मुख प्रकाश नहीं कर सकता था, क्योंकि किसी और को इस योग्य नहीं समझता था, कि वह मेरे मार्ग में कुछ रौशनी डाल सकता है "ओ खेशतन गुमस्त किरा रहबरी कुनद"वह खुद गुमराह थे, मेरी रहबरी क्या कर सकते थे ?दूसरी यह कि मैं ईश्वर की दया पर पूर्ण विश्वास करके भी यह समझता था,कि वह जीवों पर साधारण रूप से कृपा करते हैं, परन्तु किसी विशेष जीव को सन्मुख रखकर उस पर कोई विशेष का नहीं करते, अर्थात् उस समय तक उनकी **विशेष कृपा** या "इस्पेशियल प्रोवीडेन्स" के विश्वास ने मुझ पर अधिकार लाभ नहीं किया था। इसलिए अपने हि दिल में चुप चाप बहुत उधेड़ बुन हो रही थी और उसके अन्दर एक अजीब तूफान जारी था। क्या करुं? किस तरह फैसला करुं ? किस तरह अपने आन्दोलित हृदय को शान्त करुं? क्यों कर इस संग्राम में जयलाभ करूं? आखिरकर इन्हीं दिनों फिर एक और आश्चर्य घटना हुई। मेरे पास एक बंगला की पुस्तक थी, जिसमें कुछ ईश्वरोपासकों की परस्पर सत्संग विषयक उक्तियां थीं । मेरे भीतर उसके पढ़ने का खयाल उठा। मैंने उसे निकालकर पढ़ना शुरू किया, उसमें ईश्वर की विशेष कृपा के सम्बन्ध में कुछ कथोपकथन निकल आया। उसके उस समय के पाठ ने मुझ पर जादू का सा असर किया ! इस पाठ से, जहां एक ओर ईश्वर की विशेष कृपा के सम्बन्ध में मुझ में विश्वास उत्पन्न हुआ, वहां दूसरी ओर इस प्रश्न का कि क्योंकर मालूम हो, कि यह प्रेरणा ईश्वर की ओर से हि है, यह उत्तर मिला कि

ईश्वर की ओर से ऐसी जो प्रेरणा होती है, वह एक वा दो बार होकर बन्द नहीं हो जाती; किन्तु बार २ होती रहती है । इन दोनों बातों के बाह्यक आकार में अवश्य भयानक भूल थी, परन्तु उनका आन्तरिक भाव अवश्य ठीक था।

"ईश्वर" विषयक विश्वास निश्चय मिथ्या है, और इसीलिए उनकी ओर से
किसी प्रेरणा का होना भी अवश्य मिथ्या है, परन्तु यह सत्य है कि किसी मनुष्य वा पशु के हृदय में, जो भाव वर्तमान हो, उसकी प्रेरणा उसके भीतर अवश्य होती है । और यदि वह भाव भलीभान्त प्रबल हो चुका हो, और अन्य किसी भाव से दबा हुआ न हो, तो वह एक दो बार नहीं, किन्तु बार २ अपनी प्रेरणा करता है । फिर कोई भी उच्च विकाशकारी भाव ऐसा नहीं, कि वह किसी आत्मा में प्रबल रूप से वर्तमान हो, और उसके सम्बन्ध में सच्चे वा वफ़ादार रहने के लिए कोई जन सब प्रकार के आवश्यक त्याग के लिए भी तैयार हो और फिर उसके इस संग्राम, अथवा उच्चगति दायक पथ में विश्व के उस भाग की शक्तियों से सहाय न मिले कि जो उसका प्रतिमुहूर्त विकाश साधन कर रही हैं। मेरे साथ विश्व का यही अटल नियम पूरा हुआ। मैं उस समय मनुष्य और विश्व विषयक इन तत्वों को नहीं जानता था, परन्तु दरअसल विकाशार्थी अवश्य था—हां पूर्ण विकाशार्थी था । इसलिए ईश्वर विषयक मिथ्या विश्वास के समय में भी मैंने विकाशकारी नेचर से सदा सहाय लाभ की।

अब मैं अपने संग्राम के विषय में साफ़ फ़ैसला करने के योग्य बन गया।
मैं अपनी सब वासनाओं और उत्तेजनाओं आदि शक्तियों का प्रभु तो था हि, इसलिए जब मैंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया, कि यह प्रेरणा ईश्वर की तरफ़ से है, और वह चाहते हैं, कि मैं सत्य और हित का अनुरागी होकर इस जगत् से असत्य और अहित को नष्ट करने और सत्य और हित का राज्य लाने के लिए अपना समस्त जीवन उनके चरणों में भेंट धर दूं और वह सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप मेरे इस महा कठिन व्रत और संग्राम में अपनी **विशेष कृपा** के द्वारा मेरी सब प्रकार से रक्षा और आवश्यक सहाय करेंगे, तब मुझे क्यों कुछ और सोच विचार करना चाहिए और क्यों न उन ही शुभ इच्छा के पूर्ण करने के लिए अपने आपको उनके सन्मुख दीनता पूर्व्वक समर्पण कर देना चाहिए? इस भाव के उत्पन्न होने पर मेरा हृदय इस भेंट के लिए बखूबी तैयार हो गया।मेरी सब दुविधा चली गई। मैने पक्का इरादा कर लिया कि अब चाहे कुछ हो, मैं यह व्रत अवश्य ग्रहण करुंगा, और इस फैसले से एक तिल भर पीछे न हटूंगा। मैने अपनी इस इच्छा का अपनी पत्नी से जिकर किया। उसने यद्यपि उसकी महा कठिनाईयां अनुभव की, परन्तु उसने कोई विरोधी भाव प्रकाश नहीं किया, प्रत्युत मेरा सब प्रकार से

साथ देने की इच्छा प्रगट की।

दिसम्बर सन् 1882 में, यह फैसला हुआ। इसी महीने के शायद दूसरे हफ्ते के आखिर में लंडन के "मुक्ति फौज" नामक ईसाई सम्प्रदाय के मेजर टकर नामक एक अंग्रेज प्रचारक, अपनी मेम और अपने कुछ और प्रचारकों के साथ लाहौर में आए। उन्होंने "रंग महल" में एक जलसा किया। मैं भी उसमें मौजूद था। वहां पर धर्म के लिए उनके प्रशंसनीय त्याग और उनकी मेम की छोटी सी तकरीर ने मेरे फैसले को गुप्त रुप से और भी मजबूत कर देने में सहाय की।

15 दिसम्बर का दिन था। मेरे जन्मदिन में केवल पांच दिन बाकी थे। मैने अपनी नौकरी के सम्बन्ध में अपना त्याग पत्र लिखकर तैयार किया। वह त्याग पत्र यह था:-

To

The Director,

Public Instruction,

Punjab

Sir,

Having felt a call from Heaven that my services are required in another sphere of life, I feel my inability to retain my present post and consequently beg to resign it after serving the Government for the last fourteen years.

I shall feel obliged by your accepting this my resignation and issuing early order to relieve me from the office.

I bed to add with your permission, that I shall consider myself as freed from my present duties after fifteen days according to the ordinary rules of Government service, unless I receive instructions from you to the contrary.

I remain Sir,

Lahore, Your most obedient servant,

15th December, 1882. S.N. Agnihotri

(हिन्दी अनुवाद)

पंजाब के शिक्षा विभाग के

डाइरेक्टर साहब की सेवा में।

महाशय!

ईश्वर की ओर से मैं यह आदेश पाकर कि मुझे जीवन के किसी और विभाग में सेवाकारी बन्ने की जरुरत है, मैं अपनी इस सर्कारी नौकरी को, कि जिसमें मैने चौदह साल गुजारे है, और आयंदा रख नही सकता, और इसीलिए उसे त्याग करता हूं।

मैं आपका अनुग्रहीत हूंगा, यदि आप मेरा यह त्याग पत्र स्वीकार करके मुझे अलैहदा होने के लिए जल्द आज्ञा देंगे।

मै आपकी अनुमति से यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि मैं अपने आपको अपनी इस नौकरी से गवर्नमेंट के साधारण नियम के अनुसार, आज से पन्द्रह दिन के बाद आजाद समझूंगा, सिवाय इसके कि आप मुझे इसके विरुद्ध कोई और हिदायत दें।

लाहौर — मै हूं आपका

15 दिसम्बर 1882 ई. — बहुत आज्ञाकारी सेवक

एस. एन. अग्निहोत्री,

इस इस्तेफा, मैने मिस्टर स्टेन्स साहब हेडमास्टर के आगे रक्खा। वह उसे पढ़ते हि दंग रह गए। कुछ देर तक चुप रहने के बाद वह बोले:-

Head master- I am very sorry that you are going.

I- I am not sorry in the least.

H- Have you considered well over the matter?

I- Yes

H- you Have got your family and children?

I- Yes, a wife and three children.

H- You have duty towards God as well as towards your wife and children!

I- Certainly. But I am not going to neglect my duty towards my wife and children.

H- Will you get any pay?

I- No, I depend on the Lord. He will provide.

H- Shall I send on your registration today or put it off for tomorrow?

I- Please send it on today.

H- Are you decided?

I- Yes, I am decided about it.

(अर्थ)

हेडमास्टर साहब- मुझे बहुत शोक है, कि आप जाते हैं!!

मैं- मुझे तो कुछ भी शोक नही है।

हे0- आप ने इस विषय में भली भान्त सोच लिया है?

मैं- जी हां।

हे0- आपकी अपनी पत्नी और अपने बच्चे भी हैं?

मैं- जी हां, एक पत्नी और तीन बच्चे।

हे0- जैसे आपको ईश्वर के सम्बन्ध में कर्तव्य साधन की जरुरत है, वैसे हि अपनी स्त्री और अपने बच्चों के पालन के सम्बन्ध में भी?

मैं- बेशक परन्तु मैं अपनी स्त्री और अपने बच्चों के सम्बन्ध में, अपने कर्तव्य को त्याग करने का इच्छुक नहीं।

हे0- आपको कही से कुछ तनख्वाह मिलेगी?

मैं- नही। मै ईश्वर पर भरोसा करता हूं। वह मेरी जरुरतें पूरी करेगे।

हे0- क्या मै आपका इस्तेफा आज हि भेज दूं, वा अभी कल तक रोक रक्खूं ?

मैं-कृपा करके आज हि भेज दीजिए।

हेo- क्या आप ने पूरा फैसला कर लिया है?

मैं- जी हां, मैंने पूरा फैसला कर लिया है।

इधर मैंने इस्तेफा दिया, उधर मेरे ऐसा करने पर लोगों में जगह-जगह उसका चर्चा शुरु हो गया। चारों ओर से विरोधी मत प्रगट होने लगे। मेरे विशेष धर्मकोष की शक्तियों से विहीन, आत्मिक उच्च प्रकृति से अन्ध, किसी आत्मिक उच्च और महान आदर्श की अभिलाषा से शून्य, धन, सम्पद्, मान प्रशंसा, पद, प्रभुत्व और अन्य तुच्छ सुखों के मुख्य आकांक्षी, और प्रचलित नाना मतों, संस्कारों और प्रथाओं आदि के विश्वासी और दास, मेरी इस नई गति की महिमा को कब देख वा समझ सकते थे? इसलिए ऐसे नाना लोग मेरे सम्बन्ध में अपनी अपनी "दुनयवी दानाई" की बोलियां बोलने लगे। ऐसे सभी लोग, मेरे मुखालिफ तरह तरह की बातें करने लगे। मुझे खप्ती, पागल, बेवकूफ और नादान बताने लगे। किसी किसी निसबतन् अच्छे दिल वाले ने अगर सख्ती से कुछ न कहा, तो यह कहकर कि "मेरे ख्याल में ऐसा करना गलती में दाखिल है- खासकर जब यह इतना बड़ा कुनबा रखते है" अपना भाव प्रकाश किया। विरोधियों ने तो खूब हाशिए चढ़ाए-मुझ पर तरह तरह की धोखे बाजी के इलजाम लगाए। परन्तु मेरी समाज के एक दो जनों ने, यद्यपि किसी उत्साह के साथ मेरा समर्थन नहीं किया, तो भी कोई विरोध भाव प्रकाश नहीं किया। किसी ने जो मेरे प्रति आदर वा सन्मान का भाव रखता था, मेरी इस क्रिया को नापसन्द करके सरल भाव से मुझे इस विषय में पत्र लिखा, और कितने हि ऐसे जनों ने जो मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, यह इच्छा प्रकाश की, कि वह सब एकत्र होकर एक डेप्पूटेशन की शकल में मुझ से मिलें, और मुझ से इस विषय में बातचीत करे; परन्तु मैंने उन की इस कामना को स्वीकृत न किया; इस विषय में बाबू चन्द्रनाथ मित्र ने बाबू नवीनचन्द्रराय को जो चिट्ठी भेजी थी, उसमें उन्होंने यह लिखा था:-

My dear Navin Babu,

“The Para in The Tribune had convinced me that all efforts to make Agnihotri recede will be useless. You and others are of the same opinion. So let us drop the matter.

Lahore: Sincerely yours,

18th December, 1882. Chandra Nath Mitra”.

(अर्थ)

मेरे प्यारे नवीन बाबू!

अखबार ट्रिब्यून के एक जुमले ने मुझे यह निश्चय करा दिया है, कि अग्निहोत्री जी को अपने इरादे से मोड़ने में सब कोशिशे बेफायदा साबित होगी। आप, और, और लोग भी यही राय रखते हैं। इसलिए ऐसी कोशिश को अब छोड़ देना चाहिए।

18 दिसम्बर 1882 ई. आपका सरल भाव से,

चन्द्रनाथ मित्र।

मैंने इस्तेफा देने के बाद हि यह इरादा कर लिया था, कि मैं चार दिन के अनन्तर अर्थात् 20 दिसम्बर सन् 1882 ई. को, अपने बत्तीसवें वार्षिक जन्मदिन पर अपने इस नए व्रत को, पबलिक के सामने, एक विशेष अनुष्ठान के द्वारा ग्रहण करूंगा। अखबार ट्रिब्यून में इसी अनुष्ठान के सम्बन्ध में नोटिस दी गई थी।

इस महाव्रत सम्बन्धी अनुष्ठान की तैयारियां आरम्भ हुई। पण्डित नवीनचन्द्रराय ने, जो हिन्दु शास्त्रों के विख्यात वेत्ता थे, मेरे इस अनोखे व्रत विषयक अनुष्ठान के लिए बिलकुल एक **नई पद्धति** रचकर तैयार की। उन्होंने अपनी किसम के इस निराले अनुष्ठान का नाम "ब्राह्म सन्यास" रखा। प्रचलित "हिन्दु सन्यास" से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, यह प्रगट करने के लिए उन्होंने यह सन्यास शब्द के आगे विशेषता वाचक "ब्राह्म" शब्द नियोजित किया। यह पद्धति छै अंगों में विभक्त थी। यथा :-

(१) आचार।

(२) कर्म ।

(३) त्याग ।

(४) ग्रहस्थिति ।

(५) धर्म पालन ।

(६) ब्रह्मयोग ।

२० दिसम्बर, बुध का दिन, रात्रि का समय, और ब्रह्मा मन्दिर का स्थान, इस अनुष्ठान के लिए नियत किया गया । उपरोक्त समय से पहले २, मन्दिर का हाल भली भान्त सुसज्जित किया गया। मन्दिर का अगला बड़ा भाग पुरुषों के बैठने के लिए, और पिछला भाग चिकें डालकर स्त्रियों के बैठने के

लिए स्थिर किया गया । सन्ध्या के समय स्कूल से वापिस आकर, मैंने पहले क्षौर कराया, और शिर और दाढ़ी और मूंछों के सब बाल मुंडवा दिए। फिर स्नान करके, मैने वह गैरिक वस्त्र धारण किए कि जो इस अवसर के लिए तैयार किए गए थे। फिर अपनी सहधर्म्मिणी और अपने बच्चों के साथ नियत समय से कुछ पहले, मैं ब्रह्म मन्दिर में अपने नियत स्थान पर जा बैठा। हाल में मेरे प्रवेश करने से पहले हि दर्शक पुरुष और स्त्रियों का इतना समूह था कि पैर रखने को जगह न मिलती थी। जिनको बैठने की जगह न मिली, वह बरामदों के दरवाजों पर झुंड बांधे हुए खड़े थे । इस बहुत बड़े मजमे में मेरे बहुत से विरोधी परन्तु यों ईश्वरवादी लोग भी वर्तमान थे । और वह वहां केवल दुष्टता प्रदर्शन करने इस और महा शुभ कार्य में विध्न डालने के लिए आए थे। इन लोगों ने शोर मचाना, और मुंह से सिसकारियां निकालना शुरू किया। इन कहलाने वाले भलेमानसों, परन्तु दरअसल महादुष्ट आत्माओं की यह इच्छा थी, कि किसी तरह यह अनुष्ठान पूरा न होने पावे । इतने में मैं हठात् उठ खड़ा हुआ और अपने गेरवे वस्त्रों को दिखाकर, और अपने आन्तरिक धर्मबल को अपनी वाणी के द्वारा प्रयुक्त करके, मैंने ऐसे लोगों से यह अपील की, कि यदि तुम और कोई मनुष्यता नहीं रखते, तो कम से कम इन वस्त्रों की हि लाज रक्खो, कि जिनका सैकड़ों वर्षों से तुम्हारे देश में सन्मान चला आता है। इस अपील ने पूरा काम किया। सारे हाल में सन्नाटा हो गया। अनुष्ठान का काम भली भान्त चलने लगा। पण्डित नवीनचन्द्र ने ब्रह्म उपासना के अनन्तर अपनी रची हुई नई पद्धति के अनुसार इस अनोखे अनुष्ठान का शुरू का काम किया । इस अनुष्ठान की कार्य प्रणाली इस प्रकार थी:-

कार्य प्रणाली

(१) नामकरण ।

(२) शास्त्रीय वचनों का अर्थ सहित पाठ।

(३) मन्त्र स्मरण कराना।

(४) अनुष्ठान परिचालक की ओर से उपदेश।

(५) अनुष्ठान परिचालक की ओर से प्रार्थना।

(६) भजन ।

(७) व्रतधारी का भाव प्रकाश।

(८) व्रतधारी की ओर से प्रार्थना ।

(९) भजन।

(१०) परिचालक की ओर से आशीर्वाद ।

(११) अन्य जनों की ओर से आशीर्वाद।

(१२) मेम्बरों की ओर से संगीत ।

परिचालक ने मुझे अपने समीप आसन पर बिठाकर, पहले मुझ से कुछ आवश्यक प्रश्न किए । फिर उनके उत्तर के बाद (मेरी पहली सम्मति के अनुसार) मेरा **सत्यानन्द** नामक नया नाम रखा। उसके अनन्तर उन्होंने, अपनी पद्धति के पूर्व्वोक्त छओं अंगों के सम्बन्ध में, अर्थ और कहीं २ व्याख्या सहित, कुछ शास्त्रीय श्लोक पाठ किए। फिर मैंने अपने परम लक्ष्य के सम्बन्ध में जो मूलमंत्र ग्रहण किया था और जिसे वह पहले से जानते थे, उसे उन्होंने इस महा अवसर पर मुझे स्मरण कराया । फिर कुछ संक्षिप्त उपदेश देकर उन्होंने मेरे इस व्रत में सफलकाम होने के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना की। फिर एक भजन हुआ। उसके अनन्तर में खड़ा हुआ और मैंने अपना भाव प्रगट करना शुरू किया।

जहां तक मुझे याद है मेरा यह भाव करीब २ इस प्रकार का था:-

आज का यह दृश्य बिलकुल निराला है । मेरा व्रत भी पूर्णतः अनोखा है। मैं इस समय अपने आपको इस नए रूप और नई पोशाक में, एक दुल्हन की तरह देखता हूं कि जो इस भरी सभा में सैकड़ों जनों के सन्मुख सारी आयु के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर अपने लिए विवाह बन्धन अथवा विवाहव्रत को ग्रहण करती है-हां, आज मैंने अपना एक और परन्तु बिलकुल अनोखा व्याह रचाया है। एक पतिव्रता और सती स्त्री जिस प्रकार अपने पति के साथ विवाह सूत्र में बन्धकर,उसे अपने सब सम्बन्धियों से बढ़कर अर्थात् मुख्य सम्बन्धी बनाती है, और अपने जीवन की सब प्रकार की सैकड़ों अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं में अपने उस मुख्य व्रत से विचलित नहीं होती, और दुख और सुख में, विपद् और सम्पद् में, सुस्थ्य और रोगावस्था में, समृद्धि और दरिद्रता में, हर्ष और शोक में, जवानी और बुढ़ापे में, सुन्दरता और कदर्यता में, भय और प्रलोभन में, अपने व्रत में सच्ची रहकर केवल उसी **एक** को अपने हृदय में सब से बढ़कर सन्मान देती है, उसके लिए सदा वफ़ादार रहती है, दिल २ में भी कभी उससे असती व बेवफ़ा नहीं बनती उसी प्रकार मैंने आज अपने परम लक्ष्य, अर्थात् महा सुन्दर सत्य और शिव वा हित के प्रचार के सम्बन्ध में जो गठजोड़ किया है, उसके लिए आयु भर अपने जीवन की आन्तरिक और बाह्यक प्रत्येक क्रिया में सच्चा रहूं । मैं

अपने इस परम लक्ष्य का पूर्ण अनुरागी होकर जग के उपकार में हि अपनी सारी आयु व्यतीत करुं ।

सकल जगत् के सम्बन्ध में उपकार व्रत को ग्रहण करके मेरे लिए संसार में रहना और मनुष्यों के नाना सम्बन्धों में, जहां २ और जिस २ प्रकार का असत्य और अहित अथवा मिथ्या और पाप का राज्य फैला हुआ है, उसके नष्ट करने के लिए संग्राम करना, और उनके स्थान में सत्य और हित को उत्पन्न और स्थापन करना, एक लाजमी बात है । इसीलिए इस देश के लाखों स्वार्थ परायण साधुओं वैरागियों, सन्यासियों और फ़कीरों की तरह अपने नाना सम्बन्धियों और उनके सम्बन्ध में नाना उचित कर्तव्य कर्मों का त्याग मे त्याग नहीं; किन्तु मिथ्या और अन्य पाप अनुरागी आत्माओं ने मिथ्या और अन्य पापों के द्वारा जो कुछ घोर नरक फैला रक्खा है, और निकट से निकट के सम्बन्धों को भी परस्पर के लिए नाना प्रकार से हानिकारक बना रखा है, और जीवन्त धर्म से रहित होकर अधर्म को उच्च अधिकार दे रक्खा है, जिससे सब प्रकार के सम्बन्धों में नाना प्रकार का निदारुण दुःख और क्लेश छाया हुआ है,और हाहाकार और आर्तशब्द निकल रहा है,उनके आत्माओं को बदलकर पापावस्था से निकालने और उनमें धर्म जीवन उत्पन्न करने के लिए अपने इस महा कठिन व्रत और महा कठिन संग्राम में मुझे जिस कदर धन, मान, बड़ाई इज्जत, सुख, आराम, स्वास्थ्य और बल आदि के त्याग करने की जरूरत है, वह सब त्याग ग्रहण करना मेरे लिए उचित और विधेय होगा। अपने परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए यही सब प्रकार का पूर्ण त्याग, मेरा सच्चा सन्यास होगा ।

मेरे भीतर इस व्रत के सम्बन्ध में, कितने हि काल से बहुत बड़ा संग्राम जारी था। एक ओर मुझे अपने हृदय में ईश्वर की ओर से ऐसा करने की प्रेरणा अनुभव होती थी, और दूसरी ओर मुझे इस गहरे समुद्र में छलांग मारने से मेरी धन सम्बन्धी जरूरतें और अन्य आनेवाली नाना प्रकार की मुसीबतें अपने आप को पेश करके रोक बनती थीं । परन्तु आखिरकार इस संग्राम में मेरी धर्म शक्तियों की हि जय हुई। महात्मा बुद्ध के जीवन ने भी इस राह में मेरी बहुत मदद की। मेरा इरादा पक्का हो गया। मैंने यह भलीभान्त उपलब्ध किया, कि मैं इसी महा व्रत के पूरा करने के लिए प्रगट हुआ हूं। इस तत्व के साफ़ हो जाने पर पिछले शुक्रवार को मैंने नौकरी से इस्तेफ़ा दे दिया, और आज हृदय के पूर्ण योग और उत्साह और हर्ष के साथ इस साधारण सभा में अपना जीवनव्रत ग्रहण करता हूं ।

आज से इसी महाव्रत को मुख्य रखकर मेरा सबके साथ सम्बन्ध होगा। आज से इसी आत्मिक परम लक्ष्य को सन्मुख रखकर मैं तुम सब लोगों से अपना प्रत्येक सम्बन्ध रक्खगा। इसी की सफलता साधन करना मेरे जीवन का मुख्य साधन होगा।

अन्त में मैं अपने जीवनव्रत की सिद्धि में सहाय पाने के निमित्त तुम सब से कुछ २ भिक्षा मांगता हूं । भिक्षा का शब्द सुनकर डर मत जाना। मैं तुम से इस समय आशीर्वाद की भिक्षा चाहता हूं। तुममें से जो नौजवान यहां बैठे हों, वह मुझे अपनी भरी जवानी का उत्साह प्रदान करें; जो बूढ़े हों, और इस उमर में पहुंचकर संसार की किसी एक वा दूसरी बात से उदासीन बन गए हों, वह मुझे अपना यह भाव दान दें; जो बच्चे हों वह अपना निश्चिन्त भाव प्रदान करें; और जो सती स्त्रियां हों, वह अपना सतीत्व भाव दान दें ।

इस भाव प्रकाश ने अधिकांश दिलों को हिला दिया। कितने हि स्त्री और पुरुष रोते और आंसू बहाते थे। इसके अनन्तर मैंने प्रार्थना की। फिर एक भजन हुआ । फिर सभा परिचालक और कुछ अन्य जनों ने आशीर्वाद सूचक कामनाएं प्रकाश कीं, जिसके अनन्तर आखरी गीत गाकर यह अलौकिक अनुष्ठान समाप्त हुआ ।

इस्तेफ़ा दे चुकने के बाद से हि मेरे हृदय में बहुत उच्च प्रभाव लाभ करने शुरू किए। व्रत सम्बन्धी अनुष्ठान के सम्पन्न हो जाने पर मैं बिलकुल एक लोक में पहुंच गया। मेरे सब उच्च भाव बहुत सतेज और सबल हो गए। मुझ में नई ज्योति प्रकाशित हुई। जैसे एक २ कैदी क़द की मियाद के खतम होने और बेड़ियों के कटने पर अपने आपको स्वाधीन और सुखी अनुभव करता है, वैसे हि मैने अपने आपको, न केवल स्वाधीन और सुखी किन्तु उससे सैकड़ों गुणा बढ़कर कृतार्थ बोध किया। एक मछली जो पानी से बाहर किसी सूखी जमीन पर पड़ी हो, वह वहां से निकलकर और पानी में प्रवेश करने का अवसर पाकर अपने आपको जिस प्रकार अनुभव करती है, उसी प्रकार मैंने अपने आपको अनुभव किया । विश्व की जो विकाशकारी प्रकृति इस शुभ घटना लाने के लिए, लाखों वर्ष से संग्राम कर रही थी, उसके प्रत्येक विभाग ने मानों सहत्र २ मुख से मुझ पर अपना आशीर्वाद किया। और इस गुप्त परन्तु महान् आशीष को पाकर मेरा हृदय धन्य-धन्य होकर उछलने लगा, और निर्मल और उच्च अनन्द की अपूर्व लहरें लेने लगा। मैंने अनुभव किया कि अब मेरे जन्म लेने का महान् उद्देश्य, एक सीमा तक सफल हुआ।

व्रत ग्रहण करने के बाद तीन या चार दिन तक मैं स्कूल में जाता रहा। फिर क्रिस्मस अर्थात् बड़े दिन की तक़रीब में सात आठ दिन की छुट्टियां हो गईं । जिसके अनन्तर मेरे बहुत जोर देने पर कुछ दिन में मुझे सरकारी नौकरी से सदा के लिए छुट्टी मिल गई ।

3. मेरा निराला आत्मा

सूर्य से प्रसव होकर, जब से इस पृथिवी ने अपना पृथक् अस्तित्व ग्रहण किया है, तब से इसने अपने इस अलग अस्तित्व में परिवर्तन के विश्वव्यापी नियम के अधीन जो कुछ परिवर्तन लाभ किया है, उसे लाखों वर्ष हो चके हैं। इन्हीं लाखों वर्षों के अनन्तर उसमें जीवनी शक्ति प्रगट होकर धीरे धीरे उद्भिद्, पशु और मनुष्य के असंख्य अस्तित्वों में परिणत हुई है । पूर्व्वोक्त नियम के अनुसार इन अस्तित्वों का कुछ भाग उच्च रूपों और गुणों में और कुछ नीच रूपों और गुणों में परिवतित हुआ है। । मनुष्य जगत् के जिस विभाग ने अनुकूल घटनाओं में पड़कर उच्च विकाश लाभ किया है, उनके क्रम विकाश में, मैंने वह विशेष शक्तियां लाभ कीं, जिनके मिलने से आत्मा की गठन पूर्ण होती है।अर्थात् आत्मा अपनी बनावट में सारे अंगों को प्राप्त होकर पूर्णाग रूप ग्रहण करता है । बाक़ी मनुष्यों के आत्मा या तो मेरी इन शक्तियों से पूर्णतः खाली हैं, या कुछ में कहीं २ उनका कोई२ अंश पाया जाता है ।

यह पूर्ण शक्तियां यह हैं :-

सत्य ज्ञान विषयक पूर्णाग अनुराग भाव ।
परहित विषयक पूर्णाग अनुराग भाव ।
असत्य विषयक पूर्णाग विराग भाव ।
पर अहित विषयक पूर्णाग विराग भाव ।

इन सब शक्तियों को मैं बीज रूप में लेकर पैदा हुआ था। इसीलिए मेरी गर्मजात विशेषता थी । मेरी आयु की उन्नति के साथ २ इन शक्तियों ने भी क्रम २ से विकाश लाभ किया।

इनके बहुत से अंगों के यथेष्ट रूप में विकशित हो जाने पर मेरे हृदय ने मुझे उपरोक्त जीवनव्रत के ग्रहण करने के लिए मजबूर किया। इन शक्तियों के नाना अंगों के भलीभान्त विकशित हो जाने से, मेरी वासना, उत्तेजना, अहं और मासिक शक्तियां सब उनके अधीन हो गईं, अर्थात् उनमें से कोई मेरे

आत्मा की खुद मालिक या अधिपति न रही- हर एक ही इनमें से इन शक्तियों के अधीन और उनकी सेवाकारी बन गई । यही शक्तियां **देवकोष** की शक्तियां हैं । इन्हें पाकर मैंने **देवरूप** प्राप्त किया।

मेरी इन देव शक्तियों ने विकशित होकर मुझे उसी तरह हिलाना शुरू किया जिस तरह करोड़ों मनुष्यों और पशुओं को उनकी निम्न कोष वाली नाना शक्तियां हिलाती रहती हैं। इन शक्तियों के अधिकार में आकर

(१) मेरे लिए एक ओर किसी मनुष्य को किसी अहित की ओर ले जाना असम्भव हो गया । दूसरी ओर

(२) क्या मनुष्यों और क्या उनके भिन्न अन्य अस्तित्वों का जहां तक सम्भव हो, नाना प्रकार से हित वा उपकार करना आवश्यक हो गया ।

(३) जीवन विषयक नाना सत्यों के अनुसंधान में प्रवृत्त रहना,और उन्हें प्राप्त होकर उनका प्रकाश और प्रचार करना आवश्यक हो गया।

(४) सब प्रकार के असत्य मूलक धर्मविश्वासों और अहित वा पाप मूलक आचारों पर आक्रमण करना, और जहां तक सम्भव हो, उनके भयानक और महा हानिकारक अधिकार और असरों से आत्माओं और अन्य जीवों आदि का उद्धार करना, और ऐसे आत्माओं को समाज बद्ध करके उनमें से जिस २ में जहां तक योग्यता वर्तमान हो,

उसे उच्च बनाने के लिए संग्राम करना आवश्यक हो गया।

4-मेरे व्रत का प्रथम कार्य क्षेत्र-भारतवर्ष की प्राचीन फ़िलासफ़ी और वर्तमान अवस्था

पहले पहल मेरे जीवनव्रत का यह अनोखा कार्य किन लोगों में आरम्भ हुआ ? भारत के निवासियों में, और वह भी अधिकतर हिन्दु जाती में, कि जो जाती नाना कारणों से महा अधोगति की अवस्था में पहुंची हुई थी। इनमें से जिस मूल कारण के द्वारा वह इस दुरवस्था को प्राप्त हुई वह इसकी धर्म विषयक महा भ्रान्त फिलासफ़ी थी, कि जिसने उसके प्रायः सब सम्प्रदाओं में अपना रंग चढ़ा लिया है, और हिन्दुओं के भिन्न मुसलमानों में भी जिसका असर पहुंचा है । इस फिलासफ़ी का एक अंश यह है:-

मनुष्य को अपने भले वा बुरे कर्मों का फल भोगने के लिए इस पृथिवी में बारबार जन्म लेना और मरना पड़ता है। पुन: पुनः जन्म लेना और मरना और संसार के बन्धनों में पड़कर दु:ख पाना कदापि वांछनीय नहीं है। सब प्रकार के भले और बुरे कर्म मनुष्य के लिए बन्धन का हेतु हैं, इसलिए पुनर्जन्म अथवा आवागवन से मुक्ति पाने के लिए क्या भले और क्या बुरे, **सब कर्मो** के बन्धनों का **त्याग** आवश्यक है।

इस फिलासफ़ी का दूसरा अंश यह है:-

मनुष्य सब प्रकार के दु:खों से निवृत्ति और केवल सुख चाहता है। संसार में नाना प्रकार के सम्बन्धों को रखकर नाना प्रकार के दु:ख पाना लाजमी है । इसलिए सुखार्थी मनुष्य को चाहिए, कि वह अपने सब प्रकार के सांसारिक सम्बन्धों को त्याग करे। किसी सम्बन्ध में कोई कर्तव्य कर्म वा फ़र्ज़ अदा न करे। हर एक फर्ज वा कर्तव्य कर्म को छोड़के सब सम्बन्धों से बेपरवा हो जाए। मां, बाप,भाई, बहिन, स्त्री, बच्चे, स्वामी, नृत्य, मित्र, शत्रु, दरिद्र, धनी, दुखिया, असहाय, विद्वान, स्वजातीय और स्वदेशीय जन आदि सब प्रकार के मनुष्यों और अन्य जीवों से उदासीन होकर सबको समदृष्टि से देखे और केवल अपने सुख के लिए जिए और उसी को मुख्य रक्खे अपने हि में इस सुख के पाने के निमित्त योग और समाधि विषयक विविध साधन करे। इस योग साधन से आवागवन से भी मुक्ति हो जाती है। दोनों हि अंशों में औरों के सम्बन्ध में **सब कर्तव्यकर्म्मों का त्याग** अति आवश्यक है । औरों के भले और बुरे से कोई सरोकार न रखना लाजमी है।

श्री शंकराचार्य जी जो इस देश में वेदान्त वा योग फिलासफी के बहुत बड़े और अति विख्यात प्रचारक गुजरे है, अपने मोहमुद्गर में कहते हैं :-

शत्रौ, मित्रे,पुत्रे,बन्धौ,
माकुरु यत्नं निग्रह सन्धौ;
भव समचित्तः सर्वत्र त्यं,
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् । 1

अर्थ- शत्रु,मित्र,पुत्र और बन्धु आदि किसी के झगड़े वा सुलह से कोई काम न रक्खो, यदि शीघ्र विष्णुपद की वांछा हो, तो इन सबसे विरत होकर समचित्त हो जाओ।

अर्थमनर्थ भावमनित्यं

नास्ति तत: सुखलेश: सत्यम्;

पुत्रारपि धनभाजां भीति:,

सर्वत्रैषा विहिता रीति: । १३

अर्थ- धन को बुराइयों का मूल जानो, उससे किसी को लेश मात्र भी सुख नहीं मिलता। यह सब जगत् की रीति है, कि धनी को अपने पुत्र से भी खोज रहता है।

इस लिए सब सम्बन्धों और कर्तव्य कर्म्मों का त्याग करके ऐ सुखार्थियो ! अपने आत्मा में हि अपना सुख हो। आप फिर कहते हैं :-

सुरवर मन्दिर तरुतल बास:, शय्या भूतलमजितें वास:;

सर्व्व परिग्रह भोगं त्याग: : कस्य सुखं न करोति विराग:।

अर्थ –विष्णु मन्दिर के निकट एक वृक्ष के नीचे बास हो, भूमि बिछोना और हरन की खाल का ओढ़ना हो, संसार के सब सुख त्याग किए गए हों, इस वैराग्य के समान सुख कहां है ?

गीता में लिखा है :-

आत्मम्मेव व संतुष्टस्तस्य कार्य न विद्यते । ३-१७

अर्थात्- जो मनुष्य अपने अन्तर आत्मा के हि सुख में सन्तुष्ट हो, उसके लिए कोई कार्य करना आवश्यक नहीं।

अत्रि संहिता में कहा गया है :-

कर्तव्यतैव संसारो, न तां पाश्यन्ति सूरय:।

अर्थात्- कर्तव्य कर्म्मों से हि संसार में फंसना पड़ता है। इसलिए बुद्धिमान् लोग कर्तव्य कर्मों के बखेड़ों में हि नहीं पड़ते।

तुलसीदास जी का वचन है । :-

जहां काम तहां राम नहीं, जहां राम नहीं काम ;

यह दोनों हि ना मिले , रवि रजनी इक ठाम।

अर्थ–जैसे सूर्य और रात दोनों एक जगह मिलकर नहीं रहते, वैसे हि जहां राम को रखना हो, वहां किसी काम को नहीं रख सकते।

योगी की अवस्था के विषय में यह लिखा है कि

व्यापारात्खिद्यते यस्तु, निमेषोरमेषयोरपि;

तस्यालस्य धुरीणस्य, सुखं नान्यस्य कस्यचित् ।

अत्रि संहिता ।

अर्थ—जो जन ऐसी सिद्धि की अवस्था में पहुंच जाए, कि वह अपनी हि आंखों के खोलने और बन्द करने में भी दिक्कत मालूम करे, वह आलस्य परायण महात्मा जो सुख पाता है, वह किसी और को प्राप्त नहीं होता।

फिर मुक्ति प्राप्त आत्मा के सम्बन्ध में लिखा है, कि

मृत्पिंड दण्ड लोष्टादि, शिला पट्टक कुट्यवत् ।

वन्हि पुराण।

अर्थ- मुक्त जन वह है, जो पूर्णत: बेसुध हो, और मिट्टी के पिंड,लकड़ी के डंडे, कंकर,पत्थर या दीवार की तरह हो गया हो।

कैसा महत् आदर्श ! पहले जीवनीशक्ति का खनिज पदार्थों में प्रगट होना, फिर लाखों वर्ष तक विकाश-मूलक संग्राम के बाद, उसका उद्भिद् और पशु के नाना आकारों में से उन्नत होते २ और नए से नए बोधों को प्राप्त होते २ मनुष्य के आकार में प्रकाशित होना, और एक काल तक भारत वासियों में भी धीरे २ सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ना और उन्नत होना और फिर भारत की इसी सन्तान में से ऐसे तत्व ज्ञानियों अथवा फिलासफ़रों का पैदा होना, और उनका उपरोक्त महा भ्रान्त विश्वास अनुसार मनुष्य के लिए धर्म के नाम से नाना उचित कर्म्मों का त्याग करने और योग समाधि का साधन देके उसे फिर खनिज पदार्थों अर्थात् कंकर पत्थर की अवस्था में पहुंचाने के लिए उपदेश देना और तैयार करना !!

पुनर्जन्म के मिथ्या विश्वास से प्रारब्ध नामक एक और मिथ्या विश्वास की उत्पत्ति हुई । प्रारब्ध का मिथ्या विश्वास क्या ? यह विश्वास, कि मनुष्य वर्तमान काल में नाना प्रकार के जो २ सुख या दु:ख भोग रहा है, वह उसके पिछले जन्म के कर्मों का फल है । इसलिए वह अमिट है । इसी को बाजों ने भाग्य वा किस्मत बताया; अर्थात् पैदा करने वाले परमेश्वर ने जिसके ललाट में जो कुछ लिख दिया है, उसे कोई दूर नहीं कर सकता। कहा गया है-

"करम रेख नहीं मिटे, करे कोई लाखों चतुराई"

और भी

"क़िस्मत किया हर एक को क़स्सामे अजलने,

जिस चीज के क़ाबिल कोई नासिख नजर आया।"

इस मिथ्या विश्वास के प्रचार ने लोगों को सिवाय लाचारी के उद्यम करने की ओर से और भी उदासीन बना दिया । बुरे से बुरे और हानिकारक से हानि कारक नाना रिवाजों और प्रथाओं का दास रक्खा, और भलाई और उन्नति के पथ पर चलने न दिया।

उपरोक्त मिथ्या विश्वासों के प्रचार से धीरे २ पूर्णत: निकम्मे और अति हानिकारक नाना साधु सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई । इस समय इन नाना साधु कहलाने वाले सम्प्रदायों में छोटे २ लड़कों, जवानों और बूढ़ों को लेकर प्राय: **बावन लाख** आदमी शामिल हैं, कि जो केवल यही नहीं कि देशोपकारक या सामाजिक काम कुछ नहीं करते, किन्तु उलटा अपने खान, पान, सैर और सफ़र और अधिकांश जन अपने तरह २ के नशे या अमल के खर्च के लिए करोड़ों रुपया साल का बोझा भी अपने देशवासियों पर डालते हैं । और नाना पापों और एक दूसरे के साथ अप्राकृतिक कार्यों के भिन्न सैकड़ों गृहस्थ लोगों के घरों को भी खराब करते हैं ।

अच्छा हुआ, कि उपनिषद्कार और स्मृतिकार ऋषियों और शंकराचार्य जैसे योगियों ने, अपनी यह सन्यास शिक्षा स्त्रियों के लिए नहीं रक्खी और मोक्ष का यह धर्म स्त्रियों के लिए बन्द रक्खा, नहीं तो इस देश के लिए और भी बहुत बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाती। फिर भी यह सच है, कि कई सम्प्रदायों में स्त्रियां भी साधनियां बनाई जाती हैं ।

इन साधु सम्प्रदायों को छोड़कर जो लोग गृहस्थी रहे, उनमें से ब्राह्मण कहलाने वाले लोगों ने, अपने भीतर से भी एक बहुत बड़ी क्लास निकम्मे पुरोहितों की पैदा की। उनके पूर्वजों ने सूर्य,चन्द्र, अग्नि, वायु, जल आदि प्राकृतिक पदार्थों की अन्तर्गत शक्तियों और उनके भिन्न और नाना कल्पित अस्तित्वों को देवताओं वा देवियों के रूप में ग्रहण करके, अपनी साधारण बोल चाल में उनके सम्बन्ध में स्तुति और प्रार्थना आदि सूचक जो छन्द रचे थे और जो अब पुराने होकर **"वेद मंत्र"**

कहलाते हैं, उन्हें अपौरुषेय और अपने पहले पूर्वजों को अभ्रान्त प्रगट करना शुरू किया। और धोरे २ यह संस्कार सारे देश में फैल गया कि वेद अपौरुषेय हैं । अर्थात् वह किसी मनुष्य की रचना नहीं हैं। इस मिथ्या और महा हानिकारक विश्वास के फैल जाने पर "पुरोहित क्लास"की दूकान भलीभान्त कायम हो गई । इन पुस्तकों के भिन्न धीरे-२ स्मृति और पुराण आदि नामक नाना पुस्तकें रचना की गई। इनके रचने वाले भी ब्राह्मण कहलाने वाली जमायत के हि लोग थे । इनके भिन्न प्रायः और सब लोग इन पुस्तकों के हाल से नावाकिफ थे। बस और क्या चाहिए था ! जैसे वर्तमान समय में हज़ारों लोग कानून से नावाक़िफ़ होकर वकीलों के मुंह की तरफ़ देखते हैं, वैसे ही प्रायः सब हिन्दु इन ब्राह्मण नामधारी परन्तु पुरोहिताई का पेशा रखने वालों के मुंह को श्रद्धा पूर्वक देखने लगे। इस पुरोहित क्लास के लोगों ने अपने टके सीधे करने के लिए कितनी हि सूरतों में जान बूझकर और कितनी सूरतों में खुद कुसंस्कारों में लिप्त होकर बेसुधि से, नाना प्रकार के मिथ्या मतों और कुरीतियों का प्रचार किया । यह महा हानिकारक क्लास, बावन लाख साधुओं की तरह, लाखों की तादाद में इस समय में भी लोगों के कुसंस्कारों और उनकी मूर्खता का फ़ायदा उठा रही है, और जोंक की तरह मूर्ख और कुसंस्कार ग्रस्त लोगों का खून चूस रही है। भोजकी, महा ब्राह्मण,पंडे और गंगा पुत्र आदि नामधारी मनुष्य इसी सम्प्रदाय के मेम्बर हैं ।

एक ओर मिथ्या विश्वासों और संस्कारों, घमंड, वा ईर्षा और द्वेष आदि शक्तियों के नीच और महा हानिकारक अधिकार से और दूसरी ओर किसी ज्ञान दायिनी विद्या का प्रचार न होने और मूर्खता के महा भयानक अन्धकार से घिर जाने से, इस देश के वासियों की जो अधोगति हुई, उसका वर्णन नहीं हो सकता । इधर चारों तरफ़ से मिथ्या विश्वास ने दबोचा हुआ है, उधर अविद्या और मूर्खता ने दबाया हुआ है । इधर नाना सुख वासनाओं ने दिल पर कब्जा किया हआ है, उधर घमंड, ईर्षा, द्वेष और घृणा ने जहां तक सम्भव था परस्पर एक दूसरे को फाड़ा हुआ है। उच्च और नीच कुल और वंश के मिथ्या प्रभेद भाव ने तरक्की करते २ उन्हें हजारों जातों और बिरादरियों में विभक्त कर दिया है। यह ज्ञात बिरादरिएं भी किस लिए रह गईं ? इसलिए लोग परस्पर

कि शादी करने के लिए लाचार थे, अन्यथा यदि मर्द और औरत विषयक पाश्विक वासना इन करोड़ों मनुष्य आकारों परन्तु नाना बातों में साधारण पशुओं से बहुत नीच जीवों में वर्तमान न होती, तो यह बिरादरियां भी मौजूद न होतीं ।
फिर इन महा अधोगति प्राप्त बिरादरियों के लोगों ने भी साधारणतः एक दूसरे को सताने, एक दूसरे की हानि करके खुश होते और पापाचार के बढ़ाने, और मिथ्या को प्रचलित करने के भिन्न और क्या काम किया है ? और तो और जिन कितनी हि राक्षसी रसमों के वह दास बन चुके थे, जिनके दास होकर वह तरह २ का अत्याचार, और दुख सहते थे, उनसे निकलने के लिए हाथ पांव मारना तो कहीं, ख्वाहिश या इच्छा करना तक असम्भव हो गया। एक २ गधा भी ऐसा मिलता है कि जब उस पर बहुत अधिक बोझा लादा जाएतो वह उछल कूद कर अपनी पीठ से उसे गिरा देने की कोशिश करता है, परन्तु ऐसे पशुओं की तुलना में भारत के इन **ईश्वर और वेद विश्वासी हिन्दुओं** का हाल देखो, कि वह अधोगति प्राप्त होते २ अपने "अविनाशी" कहलाने वाले आत्माओं का यह स्वरक्षाकारी बोध भी नष्ट कर चुके। इनके आत्मा मिस्ल मफ़लूज के हो गए। जैसे मफ़लूज आदमी बज़ाहिर जीता तो नजर आता है, परन्तु अपने मारे हुए अंगों को हिला जुला नहीं सकता, वैसे हि यह बजाहिर जिन्दा रहकर भी आत्मा के नाना रक्षाकारी और हितकारी अंगों के विचार से बिलकुल मुदा बन गए।और उच्च बनाने वाली शक्तियों और ऐसी शक्तियों से जिस उच्च चरित्र और उच्च बल की उत्पत्ति होती है, उनसे बिलकुल खाली रह गए। गिनती के विचार से करोड़ों की तादाद में थे, परन्तु अपनी नीच गतियों और इसी लिए नीच चरित्रों के विचार से बहुत से चौपाए पशुओं से भी बदतर थे।
इन्हीं की तुलना में यूरोप के लोग, जो कई सौ वर्ष पहले जंगली अवस्था में थे, वह नाना अनुकूल घटनाओं को प्राप्त होकर धीरे २ कई अच्छे गुणों और इसी लिए सभ्यता में विकशित होकर अधिक शक्तिशाली और उच्च "नेशन" बन गए और इन्हीं में कई देशों के लोग पहले पहल अपने वाणिज्य की उन्नति के लिए इस देश में भी आए और उनमें से संख्या के विचार से बहुत थोड़े परन्तु कई शक्तिशाली अच्छे गुणों के विचार से यहां के रहने वालों की अपेक्षा बिलकुल निराले इंगलैंड वासियों ने, जैसी कि आशा करनी चाहिए थी,

धीरे २ इस देश के करोड़ों मनुष्यों पर अपना आधिपत्य स्थापन कर लिया ।
जैसे सौ भीड़ों के हांकने के लिए एक चरवाहा काफ़ी है, वैसे हि बिना दुम वाली
परन्तु दुम वालो भेड़ों से सैकड़ों दरजे बदतर करोड़ों भारत सन्तान को काबू
करनेऔर उन्हें अपने डंडे के नीचे रखने के लिए अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक
अंगरेज काफ़ी थे। इनका यहां आना और इस देश का अधिपति बनना, नेचर
की विकाशकारी शक्तियों के गुप्त कार्य के मवाफ़िक़ था-भारत की अधोगति
के उद्धार और उसकी उन्नति में एक वा दूसरे प्रकार से सहायक बनने के
लिए उनका हमारे देश का शासनकर्ता होना आवश्यक था। उनके राज्य ग्रहण
करने से पहले हमारे देश में उपरोक्त अधोगति के फल स्वरूप भयानक अराजकता फैली हुई थी। उन्होंने धीरे २ इस अराजकता को दमन करके उसके स्थान में शान्ति स्थापन की मूर्खता और अविद्या को दूर करने के लिए न सिर्फ यहां की पुरानी और प्रचलित भाषाओं के सम्बन्ध में मामूली लिखना पढ़ना सिखाने के लिए किन्तु इससे बहुत गुणा बढ़कर क्या साहित्य और क्या सायंस के विचार से अपनी बहुत उन्नत अंगरेजी भाषा की शिक्षा के लिए भी सैकड़ों स्कूल और कालेज जारी किए नाना प्रकार की विद्वता के लिए डिगरियां देने के हेतु कई यूनीवरसिटियां स्थापन कीं। धर्म मतों और कार्यों के विषय में नाना सम्प्रदाओं को सच्ची और समुचित स्वाधीनता दी । इनके इन भले और इसीलिए प्रशंसनीय कार्यों से हमारे हजारों देश वासियों को विद्वान् होने का मौक़ा मिला —इनकी तुलना में अपने देशवासियों का मुक़ाबिला करके कई बातों के विचार से अपनी गिरी हुई बा बुरी अवस्था को देखने और पहचान्ने के लिए आंखें मिलीं -इन्हें मालूम हुआ कि हम न केवल उनकी तुलना में, किन्तु दुनिया की और बहुत सी सुसभ्य लोगों की तुलना में अत्यन्त निर्धन हैं। वाणिज्य और कला कौशल के विचार से बहुत पीछे हैं। साधारण जनों में लिखने पढ़ने का प्रचार भी हमारे यहां उनकी अपेक्षा बहुत कम है । स्वास्थ्य रक्षा विषयक नाना बातों के विचार से हम बहुत रद्दी हैं । धनवाणिज्य, स्वास्थ्य और शासन आदि नाना कामों की सिद्धि के लिए परस्पर मिलकर **एक वा मुत्तफ़िक़** हो जाने की जो योग्यता उनमें है, वह हम में नहीं है । हमारे यहां के बवन लाख साधुओं की तरह उनके यहां बिलकुल निकम्मे और मुफ्तखोरे साधु नहीं हैं। वह जैसे किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए **दलबद्ध** होने और अपने दल के शासनकर्ताओं के अधीन रहने और अपनी इच्छा और रुचि आदि के विरुद्ध विनय पूर्वक उनके हुक्म पर चलने की योग्यता रखते हैं, वह योग्यता हममें नहीं है ।

उनमें ड्यूटी (duty) अर्थात कर्तव्य पालन विषयक जो कई प्रकार के बोध मौजूद हैं, वह हम में नहीं हैं । वह जैसे एक २
बड़े कार्य की सफलता के लिए अनुराग रखते हैं और उसके लिए वर्षों तक
और उमर भर और कई बार एक दूसरे के मरजाने के बाद भी मुस्तकिल होकर
जमे रहते हैं और कभी हिम्मत नहीं हारते और उसके लिए सब तरह की मुसीबतों और दिक्कतों का मुकाबिला करते हैं, हर तरह के दुख सहते हैं, परन्तु संग्राम
से मुंह नहीं मोड़ते वह गुण हम में नहीं है । उनके यहां और उनके भिन्न यूरोप
और एमेरिका के और देशों में विविध प्रकार के ज्ञान की उन्नति और धर्म
प्रचार के लिए जिस प्रकार हजारों लोग अपने सारे जीवनों को भेंट धरते हैं।
और अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए धन धरती, यश और नाम और नाना
शारीरिक सुखों को **त्याग** करते हैं, और उसमें सच्चा रहने के लिए किसी त्याग
को त्याग नहीं समझते, **वह त्याग** हम में नहीं है। उनमें नाना कामों के लिए
जिस संख्या में **विश्वास** या एतबार के लायक लोग मिलते हैं, वह हम में नहीं
मिलते । उनमें प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में **आत्म सहाय** का जैसा प्रबल भाव
वर्तमान है, वह हम में नहीं। उनमें **आत्म-सन्मान** का भाव जिस कदर विद्यमान है,
वह हममें नहीं। उनमें विवाह व्यवस्था, खान, पान, विदेश भ्रमण आदि विषयक
जो न्याय मूलक और उन्नति प्रद सच्ची **स्वाधीनता** पाई जाती , वह हममें नहीं।
उनमें **स्वच्छता, परिपाटी और सौन्दर्य** विषयक जो २ भाव जहां तक वर्तमान
हैं वह भाव साधारणतः हम में नहीं इत्यादि, इत्यादि । इन सुन्दर और शक्ति
शाली गुणों के देखने के लिए अभी तक शिक्षित सम्प्रदाय के लोगों में भी बहुत
अल्प जनों के भीतर और उनमें से भी अधिकतर केवल कुछ २ के देखने के
लिए कहीं २ आंख पैदा हुई है । मैं अपने अगले ब्यान में अंगरेजों या यह कहो
कि यूरोपियन लोगों की इन खूबियों का यूरोपियन कैरेक्टर अथवा यूरोपियन
चरित्र के नाम से जिक्र करेगा।
परन्तु यहां पर यह बात याद रखने के योग्य है, कि यद्यपि उपरोक्त खूबियों
के विचार से यह "यूरोपियन कैरेक्टर" हमारे देशवासियों की तुलना में बहुत

आला है, और यूरोप के कई देशों के भिन्न एमेरिका निवासी भी इन खूबियों को लाभ करके बहुत प्रतिभा और शक्तिशाली "नेशन ’ बन गए हैं, और इन्हीं खबियों के कारण अंग्रेज लोग हमारे प्रभु और शासनकर्ता बने हुए हैं, परन्तु यह नहीं, कि इन खूबियों के आ जाने से यूरोपियन वा एमेरिकन लोगों में और कुछ पाप या बुराईयां नहीं हैं, अथवा वह किसी प्रकार के कुसंस्कारों और कुप्रथाओं के दास नहीं हैं उनमें केवल यही नहीं, कि यह सारी बातें पाई जाती हैं, किन्तु उनमें कई बुराईयां हमारी अपेक्षा भी अधिक हैं।

यूनीवरसिटियों के स्थापन हो जाने, और हमारे देश वासियों के विद्या विभाग विषयक नाना परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने और डिगरियां लेने और कितनी हि बार इन इम्तिहानों में अंग्रेजों से भी बढ़कर नम्बर पाने से जहां यह सत्य प्रमाणित हो गया, कि इण्डियन लोग मानसिक विविध शक्तियों के विचार से किसी तरह अंग्रेजों से कम नहीं, किन्तु किसी २ बात में बढ़कर हैं । और अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजों के दैनिक दृष्टान्त और उनके साथ मेल जोल के असर से यद्यपि यह भी हुआ, कि बहुत से शिक्षित लोगों में अपने पूर्वजों से प्राप्त धन,मान,शारीरिक वेश भूषा, रहन सहन और विलासिता सम्बन्धी आदि कई लालसाएं भी बहुत बढ़ रही हैं, और कुछ जनों में अपने देश में विविध प्रकार के व्यवसाय और वाणिज्य विषयक कामों की उलति, विद्या प्रचार और सामाजिक कुरीतियों के दूर करने और दलबद्ध होकर **"नेशन"** बनने का भाव भी जाग्रत हुआ है परन्तु अभी तक उपरोक्त यूरोपियन कैरेक्टर के भलीभात उपलब्ध करने और उसकी महिमा के देखने और उसके लिए आकांक्षी होने के कोई आसार नजर नहीं आते।

धर्म्म की जिस मिथ्या फिलासफी और उसके मिथ्या प्रचार ने हजारों वर्ष से मूल कारण बनकर हमारे देश वासियों को जिस महा शोचनीय अवस्था में पहुंचा दिया है, और अब वह बिगड़ते २ हृदय की जैसी पतित अवस्था रखते हैं, उसको सन्मुख लाकर एक २ बार यह प्रश्न उदय होता है, कि और तो और सांसारिक गौरव के विचार से भी क्या यह लोग यूरोपियन और ऐमरीकिन अथवा जापानियों

की तरह कोई प्रतिभाशाली और स्वाधीन नेशन बन
सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं । अभी पचास या सौ या शायद
उससे भी अधिक वर्षों तक परीक्षा होने के बाद इस प्रश्न का कोई ठीक उत्तर मिल
सकेगा। परन्तु मेरी यह बात सदा याद रखनी चाहिए, कि पूर्व्वोक्त फिलासफी
के आधार पर वर्णाश्रम,हवन, पंचय, वेदगान,गायत्री जप,योग समाधि, ईश्वर
या किसी अन्य देव देवी की उपासना आदि जितनी क्रियाएं हजारों वर्ष से प्रचलित हुई हैं, उनके रूप में कुछ २ इधर उधर परिवर्तन कर लेने से, और शब्दों का कुछ २ हेर फेर कर देने से कोई वांछनीय फल पैदा नहीं हो सकता। कुटिलता और कपटता चाहे कैसी हि मोहिनी सूरत में सामने आती हो, फिर भी वह आखिरकार वेश्या या कंजरी की तरह छलावा साबित होती है। जैसे धतूरे के जहरदार वृक्ष की हजार कतर छांट करके भी उससे खून उत्पादक और जीवन दायक सेब के फल पैदा नहीं कर सकते वैसे हि कुटिलता और कपटता के द्वारा कोई जाति उच्च नहीं बन सकती।

यूरोप निवासियों को जो कुछ तरक्की हुई है, वह इंडिया की फिलासफ़ी से
नहीं। विकाश क्रम में उनकी हृदय भूमि कुछ और बन चुकी थी। उसमें ईसा
घुसकर भी अपनी एशियाई वैराग्य की फिलासफी का बीज न उगा सका । आज
की रोटी मांग लो, और कल की रोटी का कुछ फ़िकर करो जैसे सुई के बंद
में से ऊंट नहीं निकल सकता वैसे हि धनी आदमी ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं
कर सकता, तुम्हारे एक गाल पर जब कोई अत्याचारी थप्पड़ मारे, तब उस
जालिम के हाथ से बजाय आत्म रक्षा करने के, उससे एक और थप्पड़ खाने के लिए
अपना दूसरा गाल भी उसके आगे फेर दो; इत्यादि, एशियाई ईसा की अथवा
यह कहो कि हिन्दू और बौद्ध वैराग्य की शिक्षा को आखिरकार यूरोपियन दिल और दिमाग क़बूल
न कर सका। उसके दिल ने ईसा के दयाभाव-मूलक कई शुभ
कामों को तो ग्रहण कर लिया उसके धर्म पालकों ने बीमारों की सेवा यतीमों की
रक्षा, कोढ़ियों की शुभ्षा जैसे नाना हितकर कामों में अपना जीवन खर्च करना
तो धर्म का काम समझा परन्तु इंडिया के लाखों साधुओं की न्याई मुफ्तखोरा
बन्ना और अन्य कर्म कमाने वालों की पाकट से अपने नाना खर्च पूरे करना और

तरह २ के नशे खाकर वा पीकर दिन काटना अथवा योग समाधि का साधन करके मनुष्य से पत्थर बन जाना धर्म का काम नहीं समझा । यूरोप निवासी जिन २ विशेष घटनाओं में से गुजर कर आज उस गौरव की अवस्था में पहुंचे हैं, वह घटनाएं भी हमेशा के लिए जा चुकीं ! इंडियानिवासी उन घटनाओं को अब अपने यहां कभी पैदा नहीं कर सकते।

परन्तु जैसे इण्डिया को अपनी महा हानिकारक वैदिक फिलासफी और उसके नाना प्राचीन वा नवीन आकारों से उद्धार पाने की जरूरत है, और स्मरण रक्खो, कि एशिया के जापान ने भी ईश्वर और वैदिक फिलासफी के मिथ्या विश्वास से नहीं, किन्तु उस्से मुक्त होकर हि आश्चर्यजनक उन्नति की है वैसे हि यूरोप और एमेरिका निवासियों को भी अपने आयंदा के उच्च विकाश के लिए ईश्वर और पोप और बाईबेल मूलक नाना मिथ्या विश्वासों से उद्धार पाने की जरूरत है । इस जरूरत को एक हद तक पूरा करने के लिए नेचर के विकाश कारी विभाग के द्वारा वहां कुछ काल से कितने हि लोग पैदा होकर इन मिथ्या विश्वासों के नष्ट करने का काम कर रहे हैं । कई सोसाइटियां भी इसी उद्देश्य के पूरा करने के लिए बन चुकी हैं । पाजिटीविस्ट, रेशनल प्रेस,सेकुलरिस्ट और एथीकल सोसाइटियां इसी किस्म के नफ़ी वाले काम में अर्थात् पुरानी बोदी और गिरने वाली दीवारों के ढाने में मसरूफ़ हैं ।

परन्तु इस काल में क्या धर्म की विज्ञान मूलक सच्ची फिलासफ़ी की शिक्षा देने के लिए क्या मनुष्य तत्व संबंधी सत्यज्ञान देने के लिए क्या मृत्यु और जीवन तत्व सम्बन्धी सत्यज्ञान प्रकाश करने के लिए और क्या धर्म विषयक सत्य साधन विधि प्रदान करने के लिए जिस पूर्णाग सत्य धर्म्मावतार (कल्पित ईश्वर का कल्पित मच्छ कच्छ अवतार नहीं) की सारी पृथिवी के लिए जरूरत थी, उसके प्रकाश का गौरव एक उसी देश को मिला, कि जो विकाशकारी नेचर के इस अद्वितीय दान को पहचान्ने के सर्वथा अयोग्य था ।

5-देवधर्म की घोषणा और देव समाज स्थापन ।

चार वर्ष के संग्राम के बाद मुझे कुछ गिनती के जो शिष्य और सहायक प्राप्त हुए उनको

लेकर, मैंने अपने व्रत सम्बन्धी कार्य को पूर्णत: स्वाधीन रुप से पूरा करने का इरादा किया। 6 फाल्गुण सम्वत् 1943 वि० अर्थात् 16 फरवरी सन् 1887 ई० को, जो कि राज राजेश्वरी (अब परलोक वासिनी) विक्टोरिया के "गोलडन जुबली महोत्सव" के अवसर पर मैंने विधि पूर्व्वक एक अनुष्ठान के द्वारा देवधर्म की घोषणा करके, उसकी जय पताका खड़ी की। इसी को देव समाज के सूत्रपात का भी शुभ दिन समझना चाहिए। इस समय तक तीन जन मेरे साथ काम करने के लिए अपना सारा जीवन भेंट कर चुके थे - इनके भिन्न कुछ थोड़े से और हमदर्द और सहायक थे, और सब मिलकर प्रायः एक दर्जन आदमी थे। उन दिनों तीन मकान मेरे पास किराए पर थे, जिनमें से एक में मैं रहता था, दूसरे में आफ़िस था, और तीसरे में प्रेस । सन् 1887 ई० के अन्त में मैंने इस देवाश्रम की जमीन खरीद की; सन् 88 ई० में मैंने यहां पर छप्पर का एक मंडप खड़ा करके उसमें अपनी नई समाज का सब से पहला वार्षिकोत्सव सम्पन्न किया। फिर यहां धीरे २ कुछ और मकान बना और मैं उस में आकर रहने लगा, और अपना आफ़िस और प्रेस भी यहीं ले आया। फिर धीरे २ यहां
कुछ और इमारतें बनीं और यह देवाश्रम पूर्णतः बनकर तैयार हो गया। तब से यही आश्रम मेरे काम का प्रधान स्थान रहा है ।

६ मेरी विरोधता और मेरा विश्वास

जीवनव्रत ग्रहण करने से पहले भी कितने हि लोग मेरे बहुत विरोधी थे परन्तु व्रत ग्रहण करने के अनन्तर तो गोया चारों ओर आग लग उठी कि जो आग समय के साथ २ अधिक से अधिक प्रचंड होने लगी। इस विरोधता की अग्नि के प्रज्वलित होने का कारण क्या ? कारण मनुष्य में अहं प्रियता का बहुत प्रबल भाव ।अहं प्रियता क्या ? अपने संस्कार, अपने मत,अपने स्वभाव अपनी रुचि,अपनी वासना,अपनी इच्छा आदि का प्यार, चाहे इनमें से कोई एक वा हरेक हि उसके और अन्य अस्तित्वों के लिए कैसी हि बुरी कैसी हि अपराध वा पाप-मूलक और कैसी हि हानिकारक क्यों न हो । साधारण

मनुष्य अपने किसी मिथ्या से मिथ्या संस्कार, वा मत, वा विश्वास, और बुरे से बुरे स्वभाव, और आचार के विरुद्ध कुछ सुना पसन्द नहीं करता। और अपनी एक २ नीच से नीच और बुरी से बुरी और पापी से पापी और मिथ्या से मिथ्या गति को इतना प्यार करता है, कि उस पर और तो और अनेक बार अपने किसी सच्चे हितकर्ता की ओर से भी कोई चोट पहुंचने पर बिलबिला उठता है, कोप से जल उठता है आंखें बदल लेता है; मुंह फेर लेता है, घृणा से भर जाता है, और उसे श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखने के स्थान में अश्रद्धा और शत्रु की निगाह से देखता है और यदि इसके भिन्न वह अपने हृदय में द्वेष वा प्रतिशोध का प्रबल भाव भी रखता हो, तो फिर कृतघ्न और उत्पीड़नकारी बन कर उसे तरह २ से सताने और हानि पहुंचाने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे सब जन आत्मिक हित और अहित बोध से शून्य होते हैं । सत्य और असत्य के बोध से खाली होते हैं। पाप और असत्य को मुंह वा लेख के द्वारा बुरा कहकर भी दिल से अहित और असत्य के पूर्ण अनुरागी होते हैं- अनुरागी हैं, इसलिए सारी पृथिवी में इस कदर मिथ्या और पाप प्रचलित
हो रहा है।

अब जिस आत्मा को विकाशकारी नेचर ने अपने विकाशक्रम में सत्य और हित विषयक अनुराग शक्तियों और असत्य और अहित विषयक विराग शक्तियों को बीज रूप में देकर प्रगट किया हो, और इन शक्तियों को विकशित करके उसे अपूर्ण और इसीलिए हानिकारक गठन से ऊपर पूर्ण गठन देना चाहा हो, और इस पूर्ण गठन के द्वारा सब प्रकार से सुन्दर, पवित्र, ज्योतिर्मय और पूर्णांग धर्मस्वरूप बनाकर सारे जगत् के पूर्ण उद्धार और पूर्ण कल्याण के लिए परम आदर्श रूप में प्रकाशित करना चाहा हो, वह भला दुनिया से बिलकुल निराला जीवन रखकर और जीवनव्रत ग्रहण करके क्योंकर अपने से उलटी प्रकृति रखने वाले लोगों में आराम से रहने की आशा कर सकता है ? नहीं कर सकता, नहीं कर सकता। वह खुद नहीं कर सकता, कोई और

बुद्धिमान् भी नहीं कर सकता। इसी लिए मेरे सैकड़ों, और सैंकड़ों से बढ़कर हजारों, की तादाद में विरोधी पैदा हो गए। उनके हृदयों में मेरे प्रति शत्रुता की महा भयानक आग जल उठी चारों ओर से उसका धुआं उठने लगा चारों ओर से यह आवाज बुलन्द हुई —यह हमारे धर्म को नुकसान पहुंचाता है। यह हमारे धर्म्म मत को नहीं मानता ।यह हमारे धर्म की निन्दा करता है। यह हमें दुनिया परस्त कहता है। यह हमें झूठा पुजारी बताता है। यह हमें पापी जाहिर करता है । यह हमें कुसंस्कारग्रस्त प्रगट करता है । यह हमें कपड़ी और घमंडी जाहिर करता है। यह गुरु बनता है और लोगों को अपना चेला बनाता है। गुरुडम ने पहले हि इस देश का बहुत नाश किया है । यह किसी पुस्तक को ईश्वररचित नहीं मानता। यह बड़ा मगरूर है यह अपने आप को बहुत बतलाता है । यह हमारी सारी बातों को उलट पुलट किए देता है । खबर है, यह शैतान कहां से पैदा हो गया ? हम जैसे देवताओं की इस निवास भूमि में यह राक्षस कहां से आ गया है यह हमारा दुशमन है। यह हमारे देश का दुश्मन है यह इस लायक है, कि इसके साथ जितना बुरा सलूक किया जाए,
उतना हि ठीक है। इसे हर तरह से बदनाम करना चाहिए, यहां तक कि फिर इसका कोई मुंह तक देखना पसन्द न करे। इसे किसी तरकीब से जेल में कैद कराना चाहिए। हो सके तो इसे जान से हि मार देना चाहिए। इसके शैतानी काम को हर तरह से बन्द करना चाहिए ,इत्यादि। नाना भावों की चारों तर्फ से गूंज उठने लगी । सैकड़ों दिलों के भीतर से घृणा की, सैकड़ों के भीतर से विद्वेष और प्रतिशोध की, और सैंकड़ों के भीतर से ईर्षा की खाजाने वाली और भस्म कर देने वाली अग्नि की प्रचण्ड लाटें उछलने लगीं। प्रति मास और प्रतिवर्ष यह विरोधाग्नि बढ़ने लगी ओह ! मैं अकेला कहां और कैसे लोगों से घिर गया !! ओह ! मेरा संग्राम कितना महा कठिन संग्राम !! ओह ! इतने बड़े और इतने शक्ति शाली विरोधी दल का मैं क्योंकर और कब तक मुकाबला करुंगा ? ओह !

ऐसे मनुष्यों से आवृत्त रहकर क्या मेरे लिए यह सम्भव भी है कि मैं अपने व्रत को पूरा कर सकूंगा ? इन प्रश्नों के उत्तर में समय २ में मेरे आत्मा के देवकोष ने अपनी देवबाणी में इस प्रकार कहा :-

"तेरे आत्मा में मेरा विकाश किसी महत् उद्देश के सिद्ध करने के लिए है। विश्व के विकाशकारी विभाग ने अपने लाखों वर्ष के महा कठिन संग्राम के बाद तुझे प्रगट किया है। सारे जगत् को हि अपने परम हित के लिए तेरे आविर्भाव की आवश्यकता थी। परन्तु और कितने हि देशों की तुलना में अत्यन्त शोचनीय और अधिकतर अधोगति प्राप्त भारत के उद्धार और कल्याण के लिए तेरी विशेष आवश्यकता थी । तू मेरी देवशक्तियों के अधिकार में आ चुका है। तूने मेरी इन्हीं शक्तियों के वशीभूत होकर अपना वह अनोखा जीवनव्रत ग्रहण किया है, कि जिसे तेरे सिवाय इस पृथिवी में कभी कोई प्रहण करने के योग्य न था। क्या हुआ, कि तेरे सन्मुख इतना विरोधी दल दल खड़ा है । ऐसे विरोधी दल का खड़ा हो जाना भी जरूरी है। विश्व के विकाशकारी विभाग ने जैसे तुझे प्रकाशित किया है। वैसे हि उसके अधोगति दायक विभाग ने उन्हें जन्म दिया है । जैसे भड़ियां निर्दोष भेड़ पर आक्रमण करने और उसे फाड़कर खाजाने के लिए अपने जन्मजात हिंसक स्वभाव से हि चेष्टा करता है, वैसे हि यह अपनी जन्मजात और औरों से वृद्धि-प्राप्त नीच प्रकृति के वशीभूत होकर तेरे शत्रु बनने तुझे देखकर दांत पीसने, घृणा करने और तुझे नाना प्रकार से दुःख और हानि पहुंचाने के लिए चेष्टा करते हैं । परन्तु तू भेड़ नहीं, मनुष्य है, और मनुष्यों में भी देवात्मा, और तू नेचर के महत् उद्देश के पूरा करने के लिए आविर्भूत हुआ है, इसलिए विश्व का जो विकाशकारी महान् विभाग तेरा प्रकाशक है, वही तेरा रक्षक है ,वही तेरा सहायक है। विश्वास रख कि तू इस महा संग्राम में परास्त होने के लिए नहीं किन्तु अन्त में जय पर जय लाभ करने के लिए है। तेरा विजयी होना निश्चय है । तेरे जीवन व्रत का धीरे २ सफल होना अवश्यम्भावी है ।"

ऐसी कई अवस्थाओं में मेरे हृदय में एक २ बार यहां तक खयाल आया कि यदि मैं इस अद्वितीय संग्राम में निधन भी हो जाऊं और हमेशा के लिए अपने **सारे अस्तित्व** को भी खो दूं, तो भी मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सौभाग्य वा गौरव नहीं है, कि मैं अपने इस अद्वितीय व्रत को पूरा करूं। जब तक कल्पित ईश्वर पर विश्वास था, तब तक विश्व के विकाशकारी विभाग के स्थान में, मैं अपने इस संग्राम में रक्षा और सहाय के लिए एक उसी पर निर्भर करता था यद्यपि तब भी वह मिथ्या ईश्वर नहीं, किन्तु यही सत्य विश्व मेरा रक्षक और सहायक था। परन्तु सत्य की अधिक ज्योति के मिलने पर जब से यह मिथ्या विश्वास चला गया, तब से एक मात्र विश्व के विकाशकारी विभाग पर हि मेरा पूरा भरोसा और अटल विश्वास स्थापन हो गया ।

7-विरोधता और उत्पीड़न का महा भयंकर तूफ़ान

आज से 6 वर्ष पहले एक ऐसे हि अवसर पर मैंने इस विषय में जो कुछ बयान किया था उसका संक्षिप्त सार "जीवनपथ" में छपा था, मैं उसे यहां उद्धत करता हूं:-

"मैंने अपने देश की जो महानीच और शोचनीय अवस्था वर्णन की, उसमें असाधारण व्रत को ग्रहण करके मेरे लिए अपने देशीय जनों से नाना प्रकार की विरुद्धता और उत्पीड़न लाभ करना अवश्यम्भावी था। मतों के मतवाले ईर्षा से भरे हुए, विविध पापों के अनुरागी, अपने नीचे स्वार्थ के चरितार्थ करने के लिए और तो और अपने निकट से निकट के सम्बन्धियों पर भी अत्याचार करने वाले मुंह से किसी कल्पित ईश्वर के और दिल से किसी सच्चे शैतान की पैरवी करने वाले, वह लाखों जन जो न तो धर्म अधर्म का कोई सच्चा ज्ञान रखते हों और न अशुभ के स्थान में शुभ की कोई आकांक्षा वा उसके लिए किसी प्रकार का प्यार रखते हों, उनके लिए भला यह क्योंकर सम्भव हो सकता था, कि वह मुझे शत्रु के स्थान में मित्र अथवा परम मित्र और परम बन्धु के रूप में देखें, और मेरे लिए जहां तक सम्भव हो,

हानिकारक होने के स्थान में सहायकारी बनें ? नहीं हो सकता था और नहीं हुआ। "इसीलिए जिस दिन मैंने नौकरी छोड़ने के लिए इस्तेफ़ा दिया, उसी दिन से कितने हि लोगों के भीतर खलबली मच गई उसी दिन से विरोधी मतों का प्रकाश आरम्भ हुआ। और जब उसके चार दिन के अनन्तर मैंने अपने जन्म दिन के दिन जीवनव्रत सम्बन्धी पबलिक अनुष्ठान सम्पन्न करना चाहा, तब उस सभा में भी अधिकांश लोगों ने विध्न डालने के लिए प्रयत्न किया, और यदि वह अनुष्ठान कृकार्यता के साथ पूरा हुआ, तो इसलिए नहीं, कि उसमें विरोधी जनों ने अपनी कृपा का प्रकाश किया था, किन्तु और उच्च शक्तियों की सहाय से पूरा हुआ था। उसी दिन से विरुद्धता की अग्नि और भी प्रकाश रूप से भड़क उठी। नौकरी छोड़ने से पहले कितने हि जन, जो मुझे बहुत ज्ञानवान् और धामिक जानकर बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे, वह अब मुझ पागल और मार्ग के भिखारी के रूप में देख कर मुझ से कट गए और मुझे घृणा करने लगे । और मेरा यह जीवनव्रत ग्रहण करना और अपने व्रत (मिशन) सम्बन्धी कार्य की घोषणा करना, हज़ारों मनुष्यों के लिए इस प्रकार प्रतीत हुआ कि जिस प्रकार किसी गांव में किसी भेड़िये वा शेर का घुस आना, हानिकारक और डरावना प्रतीत होता है। और जैसे बन्दूक की आवाज सुनकर कौवों में कोलाहल मच जाता है, और चारों ओर से कागारौल आरम्भ हो जाती है, उसी प्रकार मेरे व्रत घोषणा के शब्दों को सुनकर चारों ओर कोलाहल मच गया। पागल है, खब्ती है, मूर्ख है, देश में पहले हि बहुत भिख मंगे थे, अब एक और भिख मंगा पैदा हो गया। इत्यादि, शब्दों की गूंज आरम्भ हो गई । इधर मैंने कार्य आरम्भ किया, उधर विरोधियों का विरोध बढ़ने लगा । बढ़ते २ एक बहुत भयानक और धुआंधार तूफ़ान बन गया।

जिन रूपों में विरोधता का यह अति भयंकर जड़ प्रकाशित हुआ, उनमें से प्रथम श्रद्धा

के स्थान में घृणा का प्रचार था । घृणा के उत्पन्न करने और फैलाने
के लिए मिथ्याभियोग (झूठे इलजाम) आरम्भ हुए। ऐसा कोई नीच से नीच
अपराध न था, कि जिसका मैं अपराधी नहीं बताया गया। मुझे झूठा, ठग
प्रवंचक औरों की सम्पद् को अपहरण करने वाला प्रगट किया गया । व्यभिचारी और
कंजर बताया गया। जब मेरी किसी कन्या की मृत्यु हुई, तो यह प्रकाशित किया गया,
कि मैंने उसे मार डाला है । मुझे खूनी और हत्यारा प्रसिद्ध
किया गया, और वह भी ऐसा खूनी नहीं, कि जिसने कोई एक खून किया हो,
परन्तु कई खून देश और "जाति" के लिए मुझे नाना प्रकार से महा हानिकारक
बताया गया। और खबर नहीं और क्या २ कुछ प्रगट किया गया । और यह
सब कुछ जिन्हा के द्वारा हि नहीं; किन्तु वर्षों तक विभिन्न अखबारों में लिखने
के द्वारा, बड़े २ रास्तों पर छपे हुए किन्तु गुमनाम इश्तिहारों के लगाने के द्वारा
और विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के प्रचार के द्वारा । और जिन दश पापों से
विरत होने के योग्य बन्ने पर मेरा एक २ श्रद्धालु सब से निम्न श्रेणी की
सेवकी में ग्रहण किया जाता है, मैं आप उनमें से नाना प्रकार के पापों का कर्ता
प्रकाशित किया गया। इस प्रकार के अपवाद रटना करने और अत्यन्त घृणा के
फैलाने पर भी जब कोई जन मेरी शक्ति के प्रभाव से मेरी ओर आकृष्ट होकर
आया है, तब जैसे किसी मृत देह पर गिद्ध टूट कर पड़ते हैं, वैसे हि मेरे विरोधियों ने
उसे घेरना, और घेरकर नाना प्रकार से बहकाना और डराना आरम्भ
किया। नाना प्रकार से उसे भगा देने की चेष्टा की। इन भगोड़ों की अवस्था
को सन्मुख लाने से हंसी भी आती है, और दुःख भी होता है। एक २ जन ने
यद्यपि मेरे प्रभाव के द्वारा कई प्रकार की नीचताओं से निकलने और कई प्रकार
के शुभ लाभ करने का अवसर पाया , और पहले की अपेक्षा वह कितने हि अंश
में भला जीव बन गया है, परन्तु ज्योंहि विरोधी जनों ने उसके कान भरने

आरम्भ किए त्योंहि उसने "हितोपदेश' " के उस ब्राह्मण की न्याईं, कि जो जंगल में बकरी लिए जाता था, परन्तु मार्ग में कई ठगों ने बारी २ से प्रगट होकर जब उसे यह कहा कि यह बकरी नहीं है, कुत्ता है, तब उसने अपनी बकरी को कुत्ता समझ कर छोड़ दिया था, एक २ बागी आत्मा अपनी **साक्षात परीक्षा के विरुद्ध** उनकी मिथ्या बातों पर विश्वास करके अपने शुभ और शुभ कर्ता को परित्याग करके उनका साथी बन गया है । मिथ्या कल्पना का जिस देश में हज़ारों वर्ष तक प्रचार रहा हो, वहां अपनी साक्षात परीक्षा और सत्य के विरुद्ध मिथ्या पर विश्वास करने के लिए प्रस्तुत हो जाना, कोई अचम्भे की बात नहीं। इस प्रकार के भगौड़ों के भिन्न कुछ भगौड़े और भी हैं, कि जो एक २ समय में किसी उच्च भाव के जाग्रत होने पर मेरे पास रहे परन्तु फिर अपनी एक वा दूसरी नीच रुचि और प्रकृति की सामग्री न पाकर ठहर न सके और भाग गए। और इनमें से जिनके भीतर कृतज्ञता आदि का कोई भाव उत्पन्न नहीं हुआ था, और उसके विरुद्ध प्रतिशोध का भाव प्रबल रूप में वर्तमान था वह भागकर और विरोधियों के साथ मिलकर बढ़ चढ़कर कृतघ्न और मेरे शत्रु बन गए। ऐसे लोगों को सामने रखकर और आड़ बनाकर विरोधी जनों ने मुझे और भी महा भयानक क्लेश और हानि पहुंचाने का अवसर पाया। उनकी इस महा भयानक नीच अवस्था से मेरे हृदय पर जिस २ प्रकार का आघात लगा है, मुझे जिस २ प्रकार का महा भयानक क्लेश पहुंचा है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। इन महा निदारुण आघातों से मुझ पर जिस २ भयानक रोग ने आक्रमण किया महीनों तक ऐसे किसी रोग से मेरे शरीर की जो कुछ दु:ख दाई अवस्था रही है, उसका केवल उन्हीं को कुछ पता है, कि जो ऐसे समय में मेरे पास थे। और इन सब आघातों और महा क्लेशों में बड़े २ रोगों के भिन्न मेरा शरीर सदा के लिए जिस स्वास्थ्यहीन अवस्था को प्राप्त हो गया है, उसका तुम में से भी बहुतों

को पता है । परन्तु यह सब कुछ भी काफ़ी न था। मैं अपने स्थान में प्रचार अथवा वार्षिक उत्सव आदि सम्बन्धी जो सभाएं करता था, उनमें यह लोग आकर जिस प्रकार की लीला करते थे, उसे एक २ बार ऐसा प्रतीत होता था, कि यह लोग अपनी नीचता के प्राबल्य से उस समय किसी गवर्नमेंट की भी परवा नहीं करते । बैंचों और लैम्पों का तोड़ना एक २ समय किसी वस्तु को आग लगा देना, आश्रम में ईटों और रोड़ों की वर्षा करना, चिल्ला २ कर अश्लील गालियां देना, फक्कड़ बकना, उनका एक साधारण काम था। मेरे साथियों को राह में छेड़ना, उन पर मट्टी और ठेले फेंकना, उन्हें घंसे मारना, किसी का लाठी से सिर फोड़ देना, उनके हाथ से प्रचार सम्बन्धी पुस्तकें छीनकर फाड़ देना, इत्यादि कामों के द्वारा हमें सताकर वह बहुत प्रसन्नता लाभ कर थे। मेरे मार डालने के लिए लिखकर धमकियां देते थे। छपे हुए विज्ञापनों में ऐसी कामना प्रकाश करते थे, कि कोई राक्षस आकर इसका गला घोंट दे।"

यह विरोधता बढ़ते २ सन् 1892 ई० में तूफ़ान की शकल क़बूल करती है । इस साल अर्थात् पांचवें वार्षिकोत्सव पर कई जन यह कह कहकर कि उन्हें ईश्वर ने मेरे मिशन में काम करने की प्रेरणा की है, मेरे पास अपने आत्मा को भेंट करने की आकांक्षा प्रकाश करते हैं। यह सभी यद्यपि कई बड़े २ पापों को त्याग कर चुके हैं, परन्तु उनके हृदयों पर नाना सुख वासनाओं और उत्तेज नाओं का बहुत बड़ा अधिकार है। वह आत्मश्लाघा के अनुरक्त हैं। वह नाना नीच गति दायक रुचियों और ख्वाहिशों के दास हैं । उनमें से कई ईर्षा-परायण हैं और कोई द्वेष वा प्रतिशोध का महा भयानक भाव रखते हैं। वह अपनी किसी अवज्ञा और अपने किसी अपराध के लिए टोके जाने पर जल भुनकर आग का सुख अंगारा बन जाते हैं, और अपने परम हितकर्ता को भी शत्रु के रूप में देखने लगते

हैं—सवाल हो सकता , कि ऐसे जनों को लेकर मेरा कौन सा कार्य सिद्ध होगा ? परन्तु इधर मेरा देश मुझे इससे कुछ बहुत बेहतर आत्मा नहीं दे सकता, उधर वह मेरे पास ईश्वर की ओर से अपनी तकर्रुरी का परवाना लेकर आते हैं—मैं खुद भी ईश्वर का पूर्ण विश्वासी हूं, इसलिए एक ओर उनकी असल अवस्था का तजरबा न रखकर और दूसरी ओर उन्हें ईश्वर की ओर से प्रेरित समझकर मैं उन्हें कम से कम आजमायश के तौर पर ग्रहण करने के लिए मजबूर होता हूं। थोड़े दिनों में हि उनमें से कई अपने असलरूप में जाहिर होना शुरू करते हैं-इनमें से किसी २ को कुछ हफ्तों और कई को कितने हि महीनों के बाद उनकी नीच कनृतूतों और अयोग्यता के कारण निकालना पड़ता है। और कुछ कई साल तक अपनी इस प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहने के लिए संग्राम करते हैं, परन्तु फिर परास्त होकर यद्यपि कोई और काम कबूल कर लेते हैं, तो भी समाज से बागी नहीं बनते । परन्तु बागियों में से कई उसी समाज की पनाह लेते है, जिससे कभी वह खुद निकलकर आए थे । इन बागियों में से कुछ जो वाहवा के बहुत ज्यादह भूखे थे, अथवा कृतघ्नता का बहुत प्रबल भाव रखते थे, वह स्वभावतः मेरे विरोधियों के साथ जा मिले और उनकी साजिश में शामिल होकर जहां तक सम्भव था, मुझे और मेरे मिशन को हरेक मिथ्या कलंक और अन्य बुरे उपायों के द्वारा आघात और हानि पहुंचाने के लिए खड़े हो गए। इन कृतघ्नों की मदद पाकर मेरे हजारों विरोधियों के दिल उत्साह से भर गए। हर तर्फ कोलाहल मच गया। सब तर्फ से मेरे, और मेरे व्रत को नष्ट कर देने के लिए बड़े जोश के साथ प्रयत्न शुरू हुए। चारों ओर से महा दुखदाई तूफान उठने लगा। इधर में पहले से हि ऐसे हि अजाबों से रोगी बन चुका था, उधर इन रहमदिलों ने मुझ रोगी को भी जिबह करके खा जाने की ठान ली।

इस समय मेरी क्या हालत थी, उसका कुछ पता उस लेख से मिलता है, कि
जो मैंने एक बाहर से स्टेशन से उसी साल “विलाप ’ के हेडिग से लिखा था।
मेरा यह विलाप" धर्म जीवन" में छपा था। उसका एक बड़ा भाग यह है:-

आह ! मेरी हालत कैसी दर्दनाक है ! हाय ! मेरी जिन्दगी किस कदर रहम और तरस के काबिल है !! मगर इस दुनिया में क्या कोई ऐसा है, कि जो
मेरे दिल का गमगुसार और मेरी बेकसी और तकलीफ़ों के वक्त मेरा हमदर्द
साबित हो? बज़ाहिर कोई नहीं ! क्योंकि तकलीफों को और तो और वह जो मेरे नजदीक रहते वह भी ठीक तौर से महसूस नहीं कर सकते, और जब महसूस हि न कर सकें, तो फिर अगर उनके अन्दर कुछ हमदर्दी हो भी , तो भी मुझे क्योंकर मिल सकती है ? बस मैं इस मखसूस अजाब को अकेला हि सहने के लिए पैदा हुआ हूं, और यक़ीनन अब मुझी को सहना पड़ेगा ! हाय ! मैं अपने इस निराले अज़ाब के लिहाज से किस कदर अकेला हूं ! ! मेरा इस दुनिया में कोई नहीं !!
"तमाम दिन की मेहनत के बाद एक पापी से पापी मजदूर भी रात को आराम से सोता है, और सुबह को फिर काम के लायक बन जाता है, मगर मुझे बारहा रात का यह आराम भी हासिल नहीं होता। आह ! मैं उस कुदरती आराम से भी महरूम किया जाता हूं, कि जो इस दुनिया में अदना से अदना जानवर को भी हासिल है । !!

फिर यह सब अज़ाब कहां से पहुंच रहा है ? क्या यह मेरे किसी पाप का नतीजा है ? हरगिज नहीं, क्योंकि मैं खुद पाप से पाक हूं । फिर क्या यह मेरी किसी जिसमानी या नफ़सानी ख्वाहिश या हैवानी जज़बे के जोश का नतीजा है ? हरगिज नहीं, क्योंकि उनमें से कोई जोश और कोई जजबा ऐसा नहीं, कि जो मुझ पर ग़ालिब हो, और जिस पर देवत्व का तसर्रुफ़ न हो । फिर इस दु:ख और अजाब की बुनियाद कहां है ? उन

लोगों की पिशाचाना जिन्दगी में, कि जिनके उद्धार और जिनके अन्दर धर्म की जिन्दगी पैदा करने का मिशन मेरे सिर पर है । और जो अपनी पिशाचाना जिन्दगी के तरफ़दार और आशिक़ होने के बाअस मुझे जान बूझकर या बेखबरी से तरह २ का अज़ाब देने में खुशी हासिल करते हैं । गोया जिसमें मेरा दु:ख है, उसमें उनका सुख है ।

मगर यह अज़ाब एक या चन्द दिन, या चन्द हफ्तों का नहीं, कि जिस को किसी न किसी तरह दिल पर ज़ोर देकर और इरादे की ताक़त को काम में लाकर बरदाश्त किया जाए । वर्षों से उसका सिलसिला जारी है, और उसके सदमों से न सिर्फ़ मेरा दिल बल्कि मेरा जिसम भी चकना चूर हो गया है । जिसमानी सिहत कई वर्षों से खो चुका हूं। जिसमानी कई तकलीफें हमेशा के लिए पैदा हो गई जिनमें एक दर्द की शिकायत खासकर बहुत तकलीफ़ में रखती है । दिमाग मुद्दत दराज के सख्त काम और मुख्तलिफ़ क़िसम के निहायत हि तकलीफ़देह फिकरों तरद्दों से बहुत कमजोर हो गया है और अमूमन इन्तशार की हालत रहता है । इधर जिसम में आराम नहीं, उधर दिमाग में आराम नहीं । बस मुझे दोनों के जरिए हि तकलीफ़ पहुंचती रहती है। इस पर जब देवत्व के दुशमनों की तर्फ़ से बजाहर कोई छोटी से छोटी चोट भी पहुंचाई जाती है, तो मेरे गैरमामूली दिल और उसके गैरमामूली भावों (फ़ीलिगस) के बायस यह चोट इस कदर सदमा पहुंचाती है, कि जिसके धक्के से एक २ दफ़ा मेरी कुल रूह और मेरा कुल जिसम टुकड़े २ हो जाता है । और जब कोई बड़ी चोट पहुंचाई जाती है, तो फिर उससे जिस क़िसम की बेक़रारी और जिस क़िसम की बेचैनी पैदा होती है, और इस बेकरारी की हालत में जो कुछ अजाब और दु:ख महसूस होता है, उसका अन्दाजा सिवाय मेरे और कोई नहीं कर सकता ।

जैसे किसी रेत के ढेर पर एक ढेला मारो, तो उसके ज़र्रें फैलकर सिर्फ़ थोड़ी-सी जगह घेरते हैं, मगर एक तालाब के पानी में ढेला मारो तो उसके अन्दर जो

इन्तशार पैदा होता है, उसका दायरा फैलते २ बहुत बड़ा बन जाता है, वैसे हि मेरे दिल का हाल है । एक पापी के दिल पर अपने हमजिन्स पापी के एक बुरे काम से जहां बाज दफ़ा बिलकुल सदमा नहीं लगता, और बाज़ दफ़ा सिर्फ़ बरायनाम लगता है, वहां ऐसे पापियों के एक २ अदना नापक हमले से, और जिनके साथ मेरा रूहानियत की बिना पर कुछ भी रिश्ता है, उनकी एक २ अदना से अदना नाजायज हरकत से मेरे दिल पर जो चोट लगती है, वह अपने घेर और असर के लिहाज से निहायत दूर तक फैलती है और इस क़दर दु:ख देती है, कि मैं हि जानता हूं।

मुझे यह दु:ख इस क़दर क्यों मिलता है, और यह चोट इस कदर क्यों लगती है ? इसलिए कि मेरा दिल दुनिया परस्तों और पापियों का सा नहीं बल्कि उनसे गैर है, और वह देव भावों के लिहाज से अपनी फ़ितरत में इस क़दर गैर, इस क़दर मुख्तलिफ़ और इस कदर निराला है, कि जिस क़दर मेरी कुल जिन्दगी उनसे गैर और निराली है, और इस लिए, इधर मेरा दिल जिस दर्जे लतीफ़ और ताकतवर देव भावों से पुर है, उधर उसी दर्जे और उसी निसबत में वह पिशाचत की एक २ नापाक हरकत और नापाक चोट से तकलीफ़ और दु:ख महसूस करता है। अफ़सोस है कि इन चोटों के मुझ तक पहुंचने में बजाय इसके कि मेरे खैरख्वाह साथी कुछ रोक बनें, बहुत सी सूरतों में उलटा अपनी नादानी से मददगार साबित होते हैं, और जो पत्थर किसी दुशमन की तर्फ से मेरी तर्फ़ उड़ता हुआ आता है, उसको अपनी नाफ़हमी से मुझ तक पहुंचाने में जरिया बन जाते हैं !! और इस तौर से मैं कहीं जाऊं और कहीं रहूं, अमूमन इस अजाब और दु:ख से मेरा पीछा नहीं छूटता । इस तौर से क्या अपने जिसम और क्या अपने दिमाग, और क्या अपने दिल के जरिए पिशाचत्व के पक्के आश्कों और नीज देवत्व के कच्चे तफ़ेदारों और पूरी पाकीजगी के दर्जे पर अभी न पहुंचने वालों, और मिशन के बेवफ़ा बागी और कई सूरतों में मुन्तकिम

और मोहसनकुश शख्शों की तरफ़ से मुझ पर जिस कदर चोटें लगती है, और मुझे जिस कदर दु:ख और अजाब सहना पड़ा है और लगातार सहना पड़ता है, उसका हिसाब किस के पास है ? और उसकी शहादत किस से मिलेगी ?
इस मुलक की पुरानी मजहबी फिलासफ़ी का एक आशिक कह सकता है, कि जब तू दुनिया के हरेक नापाक ताल्लुक और रिश्ते से आजाद है, और अपनी मखसूस फ़ितरत और जिन्दगी के लिहाज से इस दुनिया के लोगों में से नहीं है, तब फिर क्यों उन लोगों में रहकर और उनके लिए जीकर बरसों से यह खौफ़नाक अजाब और निहायत गैरमामूली दु:ख सह रहा है ? क्यों नहीं उस चश्में से हि कताताल्लुक कर लेता, कि जिससे यह कुल दु:ख और अजाब तुझ तक पहुंचता है, मगर उसके जवाब में मैं यही कह सकता हूं, कि मेरा मिशन मखसूस है। मेरे जाहिर होने का खास मकसद है कि जो मक़सद नेचर के इन्तजाम के मुआफिक है, और जिसका पूरा होना, क्या इस मुलक के उद्धार, और क्या कुल दुनिया की रूहानी भलाई के लिए जरूरी है, और वह बगैर इस आजाब का बोझा उठाने के पूरा नहीं हो सकता !"
विरोधियों के हमले बराबर जारी रहे। इन्हीं दिनों में एक कृतघ्न ने मेरे विरुद्ध एक किताब मुशतहिर की और बाज ने आखबारों में बहुत से झूठे मजमून भी छापे । इन सब के द्वारा मेरे विरुद्ध घृणा और विद्वेष की अग्नि को खूब भड़काया गया । पहली नवम्बर सन् 92 को लाहौर में एक विराट सभा की गई, कि जिसमें हजारों आदमी शामिल थे। इस मीटिंग में, उसे जिसे कुछ दिन पहले कई कृतघ्न अपना परम हितकर्ता कहते थे, अर्थात् मुझे और मेरे परिवार को, और मेरे कई अनुयाइयों को, जो पहले उनके श्रद्धा के पात्र थे, और जो उनकी तरह बागी नहीं बने थे, खूब दिल खोलकर कोसा गया। जिस ईश्वर के आदेश से कुछ दिन पहले वही लोग मेरे पास अपने आपको भेंट करने के लिए आए थे, उसी की वर्तमानता में अब इस

भरी सभा में मेरे मरने और मेरी पत्नी के शीघ्र विधवा हो जाने के लिए भक्ति पूर्वक प्रार्थना की गई । कहां तक उनके इस सर्व शक्तिमान् और परम दयालु ईश्वर ने अपने ऐसे भक्तों की प्रार्थना पूर्ण की उसका बताना मेरे लिए आवश्यक नहीं। मैं अब भी तुम्हारे सामने उसी जीवन्त स्थूल शरीर के साथ विद्यमान हूं, कि जिसकी मृत्यु के वह बहुत बड़े आकांक्षी थे। परन्तु मैंने उनकी विरोधता को महा पाप मूलक
जानकर भी अनेक बार न केवल उन कृतघ्नों किन्तु और कितने हि बड़े २ विरोधियों को अपनी मंगल कामनाओं में स्मरण करके उनका कल्याण चाहा है ।
इसके भिन्न मुझे और मेरे काम को मटियामेल कर देने के लिए वह सब नाना प्रकार के पापाचार ग्रहण किए कि जिनकी, उनके ईश्वर परायण हृदय उन्हें प्रेरणा करते थे। अदालत में एक बड़े से बड़े मुलजिम को भी अपने बचाव या "डिफ़ेन्स" का मौक़ा दिया जाता है परन्तु उनकी सभा के दो दिन बाद जब मैंने अपने आश्रम में एक पबलिक सभा आव्हान करके अपने डिफ़ेन्स को पेश करने की कोशिश करनी चाही और वह कोशिश भी बहुत सख्त तकलीफ़ और बीमारी की हालत में, तब इन न्यायकारी ईश्वर के भक्तों ने अपनी कलई खुलती देखकर उस सभा को अपने भयानक शोर और गुल, शरारत और दंगेबाजी के द्वारा होने न दिया । और अगर मेरी रक्षाकारी शक्तियां मेरी रक्षा न करतीं और पुलिस के भिन्न कुछ और जन मेरे पास न होते, तो वह लोग मुझे पीस कर और यथा सम्भव मुझे जान से मार कर
अपने दिलों को ठंडा करते । यह सभा तो होने से रह गई पर मेरे पहले से बहुत रोगी शरीर की स्नायु प्रणाली पर उनकी इन राक्षसी क्रियाओं का इस कदर आघात लगा, कि वह बिलकुल चकना चूर हो गईऔर मैं निहायत सख्त बीमार हो गया मेरी बीमारी दिनों दिन बढ़ने लगी, और मैं आखिरकार उस अवस्था में पहुंच गया, कि जिसमें मेरे बचने को कोई आशा न रही।
रात का समय था, और चारों ओर सन्नाटा था। मृत्यु का अमल मुझ पर

जारी था और मैं बिलकुल बेहोश पड़ा हुआ था। मेरे इर्द गिर्द जो लोग मौजूद थे, वह यही समझते थे कि मेरे लिए वह रात काटनी मुशकिल है। मुझे खुद भी पता न था, कि मैं कहां हूं । परन्तु इस घोर संकट की अवस्था में भी मेरे कुछ परलोक वासी उच्च सम्बन्धी मेरे पास उपस्थित होकर मेरे बचाने के लिए अपना २ धर्म बल प्रयोग कर रहे थे। जीवन और मृत्यु में संग्राम जारी था। आखिरकार धर्मबल गालिब आया, मृत्यु का कार्य बन्द हुआ। और मैं होश में आ गया। तब से आरोग्यता का रुख शुरू हुआ, और प्राय: दो महीने में मैं फिर चलने फिरने के लायक बन गया। मौत के बिस्तर से उठकर मैं फिर अपने व्रत सम्बन्धी कार्य में लग गया।

इस प्रकार की यह आखरी दुर्घटना न थी, किन्तु प्रायः ऐसी हि दुर्घटनाओं में से मुझे और भी अनेक बार गुजरना पड़ा है । मुझे इस दुर्घटना में से गुजरकर बहुत सी नई ज्योति और शक्ति लाभ हुई । मुझ पर जाहिर हुआ, कि मुझे अपनी कार्य प्रणाली में बहुत तबदीली की जरूरत है। समाज का वार्षिक उत्सव निकट था, और मैंने इरादा किया, कि मैं इस अवसर पर सब आवश्यक तबदीलियां पैदा कर दूंगा- मैंने अत्यन्त परिश्रम के साथ यह सब कार्य पूरा किया। इसी उत्सव अर्थात् फ़रवरी सन् 1893 से सेवकी में दीक्षित होने की प्रथा जारी हुई। मेरे विरोधियों का विरोध भी बराबर
बढ़ता गया। इस उत्सव सम्बन्धी देवयज्ञ में विघ्न डालने, और उसे नष्ट करने के लिए मेरे विरोधियों ने भी नाना आसुरिक क्रियाएं शुरू कीं। तरह २ का अत्याचार जारी किया। यहां तक कि उनके ऐसे अत्याचारों की जिले के मैजिस्ट्रेट तक शिकायत करने की नौबत आई और उसने यद्यपि पुलीस की मार्फत उन्हें बखूबी तम्बीह भी कर दी, परन्तु जैसे चीता अपनी खाल की धारियों को नहीं बदल सकता, वैसे हि यह लोग भी अपनी राक्षसी प्रकृति को बदल नहीं सकते थे। इसलिए उनके प्रासुरिक भाव बराबर बढ़ते गए। वर्षों तक इस प्रकार के सलूकों के अनन्तर जब उन्होंने अपना उद्देश्य पूर्ण

होता हुआ न देखा तो कुछ जनों की ओर से एक और प्रकार का उत्पीड़न आरम्भ किया गया। अर्थात् धर्म्म जीवन पत्र के एक दो लेखों को लेकर "लायबल" के मुकदमें खड़े किए गए । इन मुकदमों की पैरवी के लिए जहां किसी स्थान में मेरे लिए किसी वकील का हासिल करना मुशकिल कर दिया गया, वहां दूसरी ओर बिना मेहनताना लेने के बहुत से वकील विपक्षी के साथी बन गए। यह वह समय था, जब कि हम गिनती के कुछ असहाय जन एक ओर थे, कि जो न बहुत धन रखते थे, न कोई बन्धु या मित्र रखते थे, न अदालतों का कोई तजरुबा रखते थे; और उधर जो धनी थे, बड़े २ सरकारी अफसरों के मित्र थे, आप वकील होने के कारण कानून और अदालतों की उत्तम रूप से अभिज्ञता रखते थे, वह दूसरी ओर थे। हमें अपने साथियों से बाहर एक जन भी ऐसा नहीं मिलता था, कि जो हमारे पक्ष के समर्थन के लिए कोई बड़ी सहायता तो एक ओर कोई सच्ची गवाही तक दे सके । यहां तक कि एक २ समय में जिन्होंने हम से नाना प्रकार का हित लाभ किया था, वह भी हमारे पक्ष में कोई सच्ची साक्षी तक देना नहीं चाहते थे। और हम लोग सब प्रकार से अति असहाय अवस्था में पहुंचाए गए थे। ईश्वर के पुजारियों और "सत्यमेव जयते' कहने वालों की कमी न थी, परन्तु उनमें से कोई सत्य का साथ देने के लिए प्रस्तुत न था । हां, उलटा हमारे विपक्षियों की सहाय करने के लिए कितनों का हृदय उछलता था। और हमारा विपक्षी खुली अदालत में यह कहता था, कि इनके मिशन का नाश करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। वर्षों तक यह कानूनी उत्पीड़न जारी रहा, और वर्षों तक उसके द्वारा जहां तक सताया जा सकता था, जहां तक हमें और हमारे कार्य को हानि पहुंचाई जा सकती थी, वहां तक उसके लिए यत्न किया गया। इन
दिनों में हमें ईश्वर और उसके पुजारियों की जितनी परीक्षा हुई उतनी पहले कभी नहीं हई थी। हमारी इस असहाय अवस्था में हमारे विरोधियों के लिए यह विश्वास करना स्वाभाविक था, कि अब इनके "मिशन" की इतिश्री हो गई। और चारों ओर यही सम्वाद

घोषणा भी किया जाता था । और हज़ारों जन इस समाचार को सुनकर बहुत हर्ष प्रकाश करते थे । परन्तु इस महा कठिन संग्राम में यद्यपि मेरा शरीर चूर २ हो गया, सदा के लिए रोगी हो गया, धन सम्बन्धी भी बहुत हानि पहुची, प्रेस भी बन्द हो गया, काम काज में भी बहुत विश्न रहा, परन्तु अन्त में अधर्म पर धर्म की हि जय हुई। और यह बचत सत्य प्रमाणित हुआ, कि "यतो धर्मस्ततो जय:।" अर्थात् जिधर धर्म हो, उधर की हि जय होती है।

यहां पर यह प्रश्न उदय हो सकता है, कि मेरे यह महा विरोधी उत्पीड़न
कारी कौन जन थे ? इसके उत्तर में मैं बता सकता हूं, कि अधिकांश रूप से यह
वही जन थे, जो **एक ईश्वर के विश्वासी और पुजारी कहलाते हैं ।** अधिकतर
यही वह लोग थे, कि **जो अपने लिए धर्म प्रचार विषयक सब प्रकार की स्वतंत्रता रखना चाहते थे, परन्तु मेरी धर्म विषयक उचित स्वतन्त्रता को मिटा देने
के लिए यत्न करते थे।** यही वह लोग थे, कि जो उपरोक्त सब प्रकार का उत्पीड़न करके अपने ईश्वर की इच्छा पूरी करते थे। इनके सम्बन्ध में एक घटना
सुनने और स्मरण रखने के योग्य है। और वह यह है, कि कितने हि वर्षों तक,
मैंने इनका अत्याचार सहने के अनन्तर एक बार सुयोग पाकर जब इनके समाचार पत्रों के दो एडीटरों पर (कि जिन में से एक ने मुझे और मेरे मिशन को हानि पहुंचाने के लिए गिन २ कर बहुत अश्लील शब्दों में मुझ पर नाना प्रकार के झूठे अभियोग (इलजाम) लिखकर छापे थे, और दूसरे ने यह कह कर कि हां, यह अभियोग बिलकुल ठीक हैं, अपने समाचार पत्र के द्वारा पोषकता की थी। अदालतों में नालिश की, तो इन लोगों ने बड़े २ वकीलों के परामर्श के अनन्तर यह जान्ने पर कि हम अदालत में इन भरे इलजामों को किसी प्रकार भी सच्चा प्रमाणित नहीं कर सकते ; और यद्यपि वह वर्षों तक ऐसी कर्तूतें करके, अपने एक ईश्वर को अवश्य प्रसन्न करते रहे हैं, परन्तु अदालत के प्रभु को प्रसन्न नहीं कर सकते वह अवश्य उन्हें उचित दण्ड देगा, मेरे पास यह

सन्देशा भेजा, कि वह मुझ से माफ़ी मांगने के लिए प्रस्तुत हैं। और जब उनसे यह पूछा गया, कि क्या तुम अपने इलजामों का झूठा होना स्वीकार करते हो ? तो उन्होंने कहा हां इस पर उन्हें कहा गया, कि अच्छा अब तुम अपने २ और अपने भिन्न चार पांच और अंग्रेजी और उर्दू समाचार पत्रों में यह प्रकाशित करो कि हमने इनके सम्बन्ध में यह जितने मन घडंत और झूठे अभियोग छापे हैं, उनके लिए बहुत लज्जित हैं, और आगे फिर इनके सम्बन्ध में और झूठे अभियोग नहीं छापेंगे। यह बात उन्होंने स्वीकार की, और अपने और अन्य कितने हि समाचार पत्रों में इस प्रकार छपवा भी दिया। अब देखो, कि एक मात्र पूजा के योग्य और सर्व
शक्तिमान ईश्वर और विचारालय के न्यायाधीश और अल्प शक्तिमान् प्रभु में कितना अन्तर है ! वर्षों तक वह जिस सर्व शक्तिमान ईश्वर की पवित्र इच्छा पूर्ण करने के लिए हमारे विरुद्ध नाना प्रकार के अभियोग सत्य कह कर प्रचार करते रहे, उन्हीं को एक अल्प शक्तिमान् विचारपति के दण्ड से डरकर झूठा कहने लगे और यदि यह कहा जावे, कि वह पहले भी अपनी इन कर्तूतों को, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध और पाप जानते थे, तो फिर जिस ईश्वर की यह एक सामान्य आशा को भी पालन नहीं कर सके, उसकी और उसकी पूजा की महिमा औरों के सामने वर्णन करना, क्या बहुत बड़ी धुष्ठता नहीं ? परन्तु जैसा मैंने कहा है, मेरे उत्पीड़नकर्ता अधिकांश रूप से यही ईश्वर के विश्वासी और पुजारी रहे हैं। और इन्हीं लोगों के हाथ से मुझे वह सब महा दु:ख और क्लेश मिले हैं कि जिनका मैंने संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है।
मैं इससे पहले अपने "विलाप" शीर्षक लेख में से एक भाग उद्धत कर चुका हूं। देवसमाज के इतिहास में यह स्मरणीय लेख 4 अक्तूबर सन् 1892 ई. की रात को लिखा गया था । प्रायः आधी रात का समय था। चारों ओर सन्नाटा था। वर्षों तक लगातार विरोधता के आघातों से मेरा शरीर बहुत रोगी और

दुर्बल अवस्था में था। मेरा हृदय चूर २ होकर अत्यन्त दु:ख और विषाद से भरा हुआ था। मेरी आंखें आंसुओं से भीग रही थीं। मेरे जीवन व्रत का जहाज जिस पर मेरे परम लक्ष्य का झंडा खड़ा हुआ था-शोक सागर में बड़े बेग से डगमगा रहा था, मेरे चारों ओर निराशा का गहरा अन्धेरा छाया हुआ था। मैं महा विपद की अवस्था में था। परन्तु इस घोर संकट के समय में भी इस समुद्र के किनारे का "लाइट हाउस" बखूबी रोशन था अर्थात् मेरे आत्मा के दिव्य ज्ञान की पथदर्शक ज्योति बराबर चमक रही थी। इस ज्योति में, मैंने, हृदय के गहरे उद्वेग से, अपने विलाप अखीर में ,यह सतरें लिखी थीं:-

"लेकन क्या इस बेगुनाह का यह खौफ़नाक दु:ख और अजाब उठाना यूंहि जायगा ? क्या जो शख्स इन दु:ख से लबे मरग पहुंच चुका है ,जिसको अगर वह चाहता तो कभी का परे फेंक सकता था, मगर जिसको उसने नेचर और अपने मिशन के मकसद के लिए सच्चा और वफ़ादार रहने की गरज से कभी परे नहीं फेंका, और दूसरों के उद्धार और मंगल के लिए उसको अपने सिर पर लेकर बरसों से लगातार एक २ इंच कुरबान होता चला आया है, और इस अर्से में एक २ वक्त में लगातार जो अजाब उसे मिला है, उसके मुकाबल में घड़ी भर की फांसी की तकलीफ़ भी कुछ हकीकत नहीं रखती ! क्या वह सब बेमानी और बेमतलब साबित होगा ? और क्या ऐसे शख्स की यह जिन्दगी यूंहि बेअसर जायगी ? और क्या इस रूहानी पुतले का जहूर यूंहि खाली जाएगा? क्या इस पुतले की कोई खूबी जाहर न होगी ? क्या उसका असल मिशन कभी किसी पर न खुलेगा ? क्या हमेशा हि तमाम दुनिया उससे अपना मुंह मोड़े रक्खेगी, और सिर्फ़ नफ़रत की निगाह से देखेगी ? क्या सुनसान और तनहाई के वक्त के उसके कुल आंसू यूहि जाया जाएंगे ? और उसकी आहो जारी कुछ फल न लाएगी ? क्या देवत्व का कुल बीज, जो उसने बोया है, वह गारत हो जाएगा ? क्या उसके दुखिया दिल पर उसकी तरह कुरबान होकर

तसल्ली का मरहम लगाने वाले पैदा न होंगे ? क्या इस पिशाचत की दुनिया में उसकी जिन्दगी का कोई आशक और उसका कोई सच्चा प्रेमक और सच्चा सेवक न बनेगा ? क्या जिस कुरबान गाह में उसने अपने तई कुल्ली भेंट किया है, उसमें उसकी मिसाल से और उसके प्रेम के लिए और लोग अपने तई कुल्ली भेंट न धरेंगे ? क्या जिस पाक और आला बहिशती मिशन के लिए वह फ़ना होता है, उसके लिए फ़ना होने की गरज से और सैकड़ों शख्स खड़े न होंगे ? क्या जिनके बचाने और उद्धार करने, और उन्हें देवत्व की अबदी जिन्दगी और अबदी बहिश्ती बरकतों से माला माल करने के लिए उसने अपने तई सदके चढ़ाया है, वह न बचेंगे और देवत्व की अबदी जिन्दगी और बहिश्ती बरकतें न हासिल करेंगे ? क्या जिस देवत्व की धार को उसने जारी किया है उसको जारी रखने और लगातार बढ़ाने और कुशादा करने के लिए दिनों दिन ज्यादा से ज्यादह रूहें न पैदा होंगी ? क्या मेरा मिशन नेचर के कानून की बिना पर जहूर में नहीं आया ? क्या वह कभी गारत हो सकता है, और तरक्की करने और फैलने के बगैर रह सकता है ? ऐ आसमान[1]! तू बोल, और ऐ जमीन[2]! तू शहादत दे।"

यह मेरी जुबान के शब्द न थे । यह मेरे आत्मा के देव कोष की विलक्षण देवबाणी थी, जो उस समय प्रगट हुई थी । सती सीता जब बाल्मीकि के आश्रम से रामचन्द्र के दबर में लाई गई थी, और उसके शुद्ध चरित्र पर मिथ्या कलंक का अभियोग लगाया गया था, और उसका पवित्र हृदय इस मिथ्या अभियोग के आघात से टुकड़े २ होकर अत्यन्त आलोड़ित हो रहा था, तब उस असहाय अबला ने अश्रुपात करते २ जमीन की तरफ़ देखकर और विव्हल हृदय के सतीत्व भाव की जोरदार शक्ति से परिचालित होकर यह कहा था, कि "यदि मैं सती स्त्री हूं, तो मेरे सत्य के बल से धरती माता ! तू फट जा, और मैं तेरी सती बेटी अभी तेरी गोद में घुसकर हमेशा की समाधि ले लूं !!" (सती सीता की

---

[1] मुराद देवलोक के देवतों या फ़रिश्तों से है ।

[2]मुराद इसी दुनिया की पिछली इन्सानी तारीख से है।

इस कथा को लिखते वक्त मेरी आंखों से आंसुओं धार बह की रही हैं) मैंने भी इस महा दुखदाई विलाप के समय अपने अत्यन्त हदय
आलोड़ित के साथ धरती के भिन्न आकाश को भी अपनी साक्षी करके अत्यन्त करुणा उत्पादक शब्दों में बिलबिला कर यह कहा था :-
"क्या मेरा मिशन नेचर के कानून की बिना पर जहूर में नहीं आया है? क्या वह कभी ग़रत हो सकता है, और तरक्की करने और फैलने के बगैर रह सकता है ? ऐ आसमान तू बोल ! ऐ जमीन ! तू साक्षी दे !!" इन धर्म बल से परिपूर्ण शब्दों से धरती हिल गई आकाश कांप उठा—मेरे प्रश्न के उत्तर में गुप्त स्वर में यह गूंज उत्पन्न हुई :-
"निश्चय तेरा मिशन नेचर के क़ानून की बिना पर जहूर में आया है। धैर्य रख और विश्वास कर, कि यह तरक्की करने और फैलने के बिना नहीं रहेगा हम दोनों हि इस बात की सच्ची साक्षी देते हैं । "
यह साक्षी निश्चय सत्य थी। महा भयानक प्रतिकूल घटनाओं के साथ २ अनुकूल घटनाएं भी पैदा होती गई। मेरा जीवनव्रत सम्बन्धी कार्य भी बढ़ता रहा । और पिछले तेरह साल में उसने जिस कदर आश्रर्य जनक उन्नति की है, उसका हाल किसी जाने वाले से छिपा हुआ नहीं है।

8-मेरा घोर संग्राम और परिश्रम

वर्षों से घन घोर युद्ध हो रहा है; विरोधी दल दिनों दिन बढ़ रहा है। मैं भी
अपने देवशस्त्रों के साथ मैदान में डटा हुआ हूं। अपने उपदेशों अपने लेखों अपने
व्याख्यानों, अपने कथनों अपनी शुभ कामनाओं आदि के द्वारा अपनी देवशक्ति
के बाणों को चारों ओर छोड़ रहा हूं। मेरे यह तीक्ष्ण बाण एक या दूसरे जन को
घायल करते हैं। घायल होने पर उनके आत्माओं ने मिथ्या और पाप की धातु
निर्मित जो जिराबक्तर पहनी हुई थी, उसमें सूराख हो जाते हैं और उन सूराखों से मेरे
जीवन्त धर्म्म की कुछ किरणें उनके अन्धकार को दूर करती हैं, और वह

मुझे उलटे रूप में देखने के स्थान में किसी कदर सत्य रूप में देखने का मौका पाते हैं। वह मुझे उस समय हितकर्ता रूप में अवलोकन करते हैं। मेरे प्रति उनके भीतर एक प्रकार की श्रद्धा पैदा होती है और यह अपने आप मेरी ओर खिच कर चले आते हैं, और मेरा पक्षा ग्रहण करते हैं । मेरा पक्ष ग्रहण करने से उनकी भी मुखालफत शुरु होती है। उधर विरोधी जन सताते हैं, इधर मेरे पास जाने पर यद्यपि उनके कितने हि मोटे २ कुसंस्कार और पाप तो छूट जाते हैं, परन्तु जिन कितनी हि सुख वासनाओं के वह पहले से अनुरक्त और उनके भिन्न ईर्षा, द्वेष, अहंकार आदि भावों के अधीन थे, उन पर आघात लगने से उनमें से कितने
जन मुझे फिर उलटे रूप में देखने लगते हैं। फिर मुझ से फटकर बागी हो जाते हैं। और कई कृतघ्न इन में से विरोधी जनों से मिलकर उनसे भी बढ़कर मुझे सताने और हानि पहुंचाने के लिए कमर कस लेते हैं। पारिवारिक जनों की नाना अबोधताओं और अवज्ञाओं से नाना प्रकार के कष्ट मिल रहे हैं। अपने और अपने पारिवारिक जनों के भिन्न, कई अनुयाई जनों के भरणपोषण का भी मुझ पर बोझा है । जंग के नाना सामानों के प्राप्त करने के लिये रुपए की सख्त जरूरत है । और यद्यपि सहायकारी नेचर के गुप्त कार्य से धन विषयक अभाव एक सीमा तक दूर होता है, परन्तु ऐसे महा कठिन संग्राम में मुझे सहानुभावी लोगों की जिस सहानुभूति और विश्वास पात्र लोगों की जिस विश्वस्तता को आवश्यकता है, वह सहानुभूति और विश्वस्तता वा वफ़ादारी प्राप्त नहीं । मैं प्रकाशत: कुछ जनों को अपने पक्ष में देखकर भी किसी को अपना नहीं समझ सकता हूं। मैं किसी पर भरोसा नहीं कर सकता हूं। जिन अनुयाइयों के हृदय में में अपनी ज्योति और शक्ति पहुंचाकर उन्हें उच्च बनाने के लिए अति कठिन संग्राम करता हूं और नाना साधनों और उपदेशों आदि के द्वारा घंटों तक (दिन में भी और रात में भी) अपना निहायत कीमती खून और अपनी निहायत कीमती ताकतें उन पर खर्च करता हूं, वह

नेचर की अधोगति के क्रम में अपने पूर्वजों से ऐसी रद्दी प्रकृति लेकर आए हैं, कि उन में कोई आशाजनक परिवर्तन नहीं होता। कुछ दूर के बाद उनकी उन्नति का कोई क्रम नहीं चलता। और उन पर मेरा अधिकांश परिश्रम निष्फल जाता है। परन्तु मैं हित के नाना अंगों का पूर्ण अनुरागी, अपने परिश्रम की निष्फलता की कुछ भी परवा न करके, और इससे हत उत्साह न होके फिर भी उन्हें विविध प्रकार से उन्नत करने और योग्य बनाने के लिए लगातार परिश्रम किए जाता हूं। जिस देश में लाखों लोग उजरत या तनख्वाह लेकर भी जो काम वह कर सकते हैं, उसके करने से जहां तक हो, जी चुराते हैं, और यथा सम्भव उसे क्या यथेष्ट रूप में और क्या नियत समय में और क्या भली भान्त पूरा करना नहीं चाहते और नहीं करते, जब कि वह उसके द्वारा धन लाभ करने की पूर्ण लालसा भी रखते हैं, उस देश के ऐसे हि जनों में से जो जन एक ओर आत्महित और कर्तव्य बोध विहीन हों, और दूसरी ओर धन लालसा न रखते हों, वह केवल किसी क्षणिक उच्छवास से परिचालित होकर मेरे जैसे पूर्ण व्रतधारी के पास आकर क्योंकर जिम्मेवारी उत्साह और परिश्रम के साथ कोई काम अधिक काल तक पूरा कर सकते हैं ? नहीं कर सकते और केवल यही नहीं कि वह ऐसा नहीं कर सके, किन्तु अपनी नाना नीच गतियों के द्वारा मेरे लिए नाना
प्रकार से हानिकारक बनते रहे हैं । एक ओर मुझे अपने नाना कामों के लिए
जिस प्रकार के योग्य जनों की जरूरत थी, वह यह देश पूर्ण नहीं कर सकता,
दूसरी ओर जो अयोग्य जन मुझे प्राप्त हुए , वह नाना उच्च भावों से विहीन
होने के कारण केवल यही नहीं, कि मेरे विविध कामों को पूरा करने से लाचार
हैं, किन्तु अपनी नाना विश्वास घातक क्रियाओं और अवज्ञाओं से मेरे लिए महा
दुखःदाई और हानिकारक बनते रहे हैं । मुझे उनकी इस धर्म विषयक पालना
में भी बहुत दुखदाई संग्राम करना पड़ा है। ऐसे लोगों से यद्यपि बहुत मोटे २ पाप अवश्य छूट जाते रहे हैं, परन्तु और नाना प्रकार के कितने हि पापों का बोध

न होने तक, वह मुझे अपनी एक,२ नीच क्रिया के द्वारा बहुत दु:ख और क्लेश पहुंचाते रहे हैं । कर्तव्य कर्म विषयक विविध प्रकार की त्रुटियों और स्वार्थ और अहं आदि विषयक विविध प्रकार की नीच गतियों के द्वारा उन्होंने लगातार वर्षों तक मुझे जिस २ प्रकार की यंत्रणा दी है, उसको में हि जानता हूं । ऐसे एक २ सेवक और उसके भिन्न एक २ और सम्बन्धी ने अपनी एक वा दूसरी नीच क्रिया से अनेक बार मुझे इतना क्लेश पहुंचाया है, कि उससे मैं मछली की न्याईं तड़पता रहा हूं । और कितनी हि बार यह यंत्रणा इतनी असह्य हो गई है। कि मैंने उस समय यह चाहा है, कि यदि मेरा यह शरीर छूट जाए, तो अच्छा हो। इस दीर्घ काल में मुझे इस अधोगति प्राप्त भारत भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं मिला, कि जिसको मैं सदा के लिए अपना मित्र और बन्धु अनुभव कर सकता जिस पर पूर्ण विश्वास कर सकता, और सदा के लिए उसे अपना शुभकांक्षी जान सकता। तब तुम सोच सकते हो, कि मेरा यह संग्राम कितना असाधारण संग्राम रहा है। मैंने इस महा घोर संग्राम में पड़ कर एक २ समय में अपने आप को जहां चारों ओर से सताने और दुख देने वालों से घिरा हुआ पाया, वहां लाखों मनुष्यों से भरी हुई इस भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं देखा जिसके सम्मुख मैं अपना भली भान्त हृदय भी खोल सकूं, और अपने लिए यथेष्ट सहानुभूति लाभ कर सकूं । मेरी प्रकृति तक पहुंचकर मेरी अवस्था को उपलब्ध करने वाला कोई न था। फिर मुझ पर जिन बहुत से कामों का बोझा पड़ना उचित न था, वह कमर तोड़ बोझा मेरे ऊपर हि पड़ता रहा है। एक २ बार मैं बहुत बीमार हो जाता हूं फिर भी मुझे आराम लेने का मौका नहीं। चिकित्सक कहते हैं कि मुझे अपने रोग की निवृत्ति और बल की प्राप्ति के लिए आराम अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु मेरे हालात मुझे आराम लेने नहीं देते। मेरे विरोधी भी मुझे किसी तरह चैन से रहने नहीं देते। उनकी ओर से आघात पर आघात पहुंचाए जा रहे हैं । वह मेरे मिशन के नष्ट करने के लिए सर्वदा कमर कसे खड़े हैं। फिर भी मैं अपने अलौकिक धर्म बल के

द्वारा इन सब महा विपदों और कठिनाईयों का मुकाबला किए जाता हूं । अब यदि इन कुल बातों को

सन्मुख लाकर मेरे संग्राम को उपलब्ध करना किसी लिए सम्भव हो,तो वह अनुमान कर सक्ता है, कि जैसे मेरा जीवन व्रत अद्वितीय था, वैसे हि उसको पूर्ण करने के लिए मेरा संग्राम भी आज तक अद्वितीय रहा है।

व्रत ग्रहण करने के पहले काल को छोड़कर व्रत ग्रहण करने के बाद आज तक पच्चीस वर्ष में, मैंने तुम सब नाना प्रकार के अस्तित्वों के उद्धार और कल्याण के लिए क्या २ महा त्याग किया है, क्या २ आघात, क्या २ दु:ख, क्या २ क्लेश और अजाब सहे हैं, क्या -२ हानियां उठाई हैं, इन पच्चीस वर्षों में सख्त बीमारी वा किसी लाचारी के भिन्न मैंने बिना एक दिन की भी छुट्टी लेने के, लगातार हर रोज दिन में और अनेक बार बड़ी२ रात तक काम किया है। इस लम्बे काल में मैंने विज्ञान-मूलक फिलासफी और विज्ञान-मूलक धर्म और धर्म मूलक फिलासफी के महागूढ़ तत्वों के अनुसंधान, देवशस्त्र की रचना, उर्दू, अंग्रेजी और हिन्दी भाषा प्रायः डेड सौ पुस्तकों और सैकड़ों मुजामीन के लिखने और कई मासिक पुस्तकों और अन्य समाचार पत्रों के सम्पादन करने, हजारों उपदेशों और व्याख्यानों के देने, विरोधियों के साथ नाना प्रकार का मुकाबिला करने, सामाजिक कितनी हि इन्स्टीट्यूशनों के स्थापन और परिचालन करने धर्म प्रचार के काम को चलाने और बढ़ाने के लिए कर्मचारियों आदि को नाना प्रकार की शिक्षा देकर तैयार करने समाज के नित्य बढ़ते हुए नाना प्रकार के कामों के निबटाने, अपने अनोखे और नए मिशन के सम्बन्ध में सैकड़ों किस्म की उलझनों

के सुलझाने, दिक्कतों और झगड़ों के दूर करने जंग के नाना प्रकार के जरूरी सामानों के हासल करने, लायक और काफी जनों के न मिलने से, जो काम औरों के करने का था, उसे मजबूर होकर खुद करने, सेवक सेवकाओं की अवस्था की देख भाल रखने, हेड आफिस के सम्बन्ध से विविध कामों की जांच पड़ताल और परिचालन करने, और

इसी प्रकार के और बहुत से कार्यों के करने में जितना परिश्रम किया है, उनका कौन अनुमान कर सकता है ? रोगी से रोगी अवस्था में भी अपने हितअनुराग से परिचालित होकर, हां अनेक बार अन्धा होकर मैंने जिस प्रकार अपनी जान पर खेल कर औरों के हित के लिए सोचा और काम किया है, उसे कौन जान सकता है ? और फिर जिनके भले के लिए यह सब कुछ महा परिश्रम और महा त्याग हुआ है, उन्हीं में से जब लोग मेरी विशेष देव प्रकृति के विरुद्ध अपनी नीच या आसुरिक प्रकृति रखकर मेरे समीप न आते हों, मुझे मेरे सत्य रूप में देखने की योग्यता न रखते हों, नाना हित पाकर भी मेरे प्रति कतृज्ञ भाव के उत्पादन और प्रदर्शन करने के अयोग्य हों, और कई जन कृतघ्नता के प्रकाश के लिए हर समय तैयार रहते हों, मुझे उचित सन्मान देना तो कहीं रहा, साधारण भद्रता मूलक सन्मान देना भी जिनके लिए अनेक बार कठिन हो, जो मेरी समाज में अपनी उमर का बहुत बड़ा भाग खर्च करके भी, और मेरे घर में हि जन्म लेकर और पलकर भी, अपनी नीचता पर आघात के लगने से मुझे उलटे रूप में देखने लगते हों, आकर्षण के स्थान में मेरे प्रति घृणा के अति बुरे और विनाशकारी भाव से भर जाते हों, और कोई जन द्वेष भाव से भरकर दिल २ में मेरी मौत की भी कामना करने लगते हों, जिन समीषी जनों के साथ रहना हो, उनके साथ दिल खोलकर साधारणत: कभी बातचीत तक न हो सकती हो, सख्त से सख्त परिश्रम के बाद जब जिसम और दिमाग किसी तरह काम करने के लायक न रहा हो, तब भी उसकी **तफरीह** के लिए प्राय: कोई सोशियल सामान् प्राप्त न हो और कोई **हमदर्दी** न मिलती हो, दूसरी तरफ बाहर के नीच लोगों से लगातार अलग फिटकार और पीड़ा मिलती हो, उनमें रहकर और उन्हीं के हित में रत रहकर मैंने अपने जीवनव्रत के जो पच्चीस साल व्यतीत किए हैं, उसमें मेरी छबि को जैसी कुछ कि वह तुम्हारी योग्यता के अनुसार तुम्हारे सामने आ सकती हो, अपने सन्मुख लाओ । सोचो कि इतने काल के ऐसे महा संग्राम में रहकर यदि अब तक मेरा यह स्थूल शरीर बाकी है, तो क्या यह मोजिजा नहीं ? क्या यह सच

नहीं, कि मैं इस महा संग्राम में पड़कर एक बार नहीं,किन्तु अनेक बार **मृत्यु** के समीप पहुंच गया हूं ? क्या सच नहीं कि मैं बहुत वर्षों से ऐसे कई रोगों से रोगी हूं, कि जिनके कारण वर्ष के प्राय: सारे दिनों में हि मुझे दवा खाने, पीने और कभी लगाने और कभी डालने की जरूरत रहती है। क्या यह सच नहीं कि मैं अब तक इसलिए बचा रहा है कि मेरे व्रत के पूरा करने के लिए मेरा सुरक्षित रहना जरूरी था ?

9-मेरे निराले संग्राम के नराले फल ।

पिछले पच्चीस साल के महा कठिन और घोर संग्राम के द्वारा अब तक क्या २ फल उत्पन्न हुए हैं, उनका बतलाना इस समय मेरा काम नहीं किन्तु तुम लोगों का काम है । क्या आज के इस विशेष दिन में तुम उन फलों को अपने और सैकड़ों अन्य नर नारियों के जीवन में नहीं देखते ? क्या उन्हें समाज की नाना इन्स्टीट्यूशनों में नहीं देखते ? क्या उन्हें नाना आश्रमों और स्कूलों की इमारतों में नहीं देखते ? क्या डिपुटी कलेक्टर,तहसीलदार, मेजिस्ट्रेट, वकील, ग्रेजुएट, सौदागर, कारखानेदार और रईस वगैरा क्लास में से, जो लोग चन्द सालों के अन्दर समाज में आए हैं, उन में नहीं देखते ? क्या हमारे मासिक और पाक्षिक पत्रों में समाज के विविध प्रकार के कामों की जो खबरें छपती रहती हैं, उनमें नहीं देखते ? क्या हमारे यहां के कई प्रकार के फंडों के लिए धन प्राप्ति में नहीं देखते ? क्या हमारे यहां हर साल नई से नई जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, और दिनों दिन हमारे साहित्य की वृद्धि हो रही है, उनमें नहीं देखते ? क्या यह सच नहीं कि तुममें से जो जन पहले शराबी थे, व्यभिचारी थे, मांसाहारी थे, चोरियां करते थे, रिशवतें लेते थे, जुआ खेलते थे, पशु मारते थे और जिनके घरों में कोई कन्या जीने नहीं पाती थी, ऐसे सब जनों के जीवन में मेरे सम्बन्ध के द्वारा उच्च परिवर्तन के आने से, यह सब पाप और महा पाप दूर हो गए हैं, तुम्हारी गति बदल गई है तुम्हारे नीच सम्बन्ध बदल गए हैं, तुम्हारे घरों का नया रूप हो गया है, जहां पहले शराब की भट्टियां चढ़ी रहती थीं, वहां अब धर्म के साधन होते हैं। जिन स्थानों में पहले धर्म्म साधनों के लिए

कोई स्थान न था, वहां अब आश्रम बने हुए हैं। जिन घरों की स्त्रियां और लड़कियां मूर्खता की पुतलियां बनी हुई थीं,वह अब धर्म सम्बन्धी विविध पुस्तकें पढ़ती हैं । जो पुरुष और स्त्री नाना प्रकार के हानिकारक कुसंस्कारों में फंसे हुए थे, वह अब उनसे उद्धार पा गए हैं। जगह २ सेवकों के लड़के लड़कियों के लिए स्कूल खुल गए हैं। समाज में ऐसी
स्त्रियां बहुत थोड़ी मिलेंगी, कि जो कुछ लिखना पढ़ना न जानती हों। जिन घरों
से पहले विवाद और कलह की हाय २ उठती रहती थी, वहां से अब उच्चभाव- उत्पादक सगीतों को ध्वनी निकलती है । जो घर नरक की सदृश पाप और दुखों
का स्थान बने हुए थे, वहां से धर्म और सद्भावों की महक आ रही है।जो पहले नीच स्वार्थ के वश होकर किसी का कोई भला करना नहीं चाहते थे,यहां तक कि अपने पारिवारिक सम्बन्धियों का भी कभी कोई शुभ नहीं सोच सकते थे वह अब औरों की सेवा और शुश्रुषा करते रहते हैं। जो पहले निकम्म पड़े रहते थे, और कुछ काम नहीं करते थे, वह परिश्रमी बनकर विविध प्रकार के भले काम करते हैं । यह सब कुछ फल क्योंकर उत्पन्न होते, यदि मैं इस महा संग्राम में न पड़ता और उसमें पड़कर वर्षों तक नाना प्रकार के उत्पीड़न और नीचता जन्य दुखों और क्लेशों, शारीरिक रोगों और अन्य हानियों को अपने ऊपर न लेता? और अब तुम अपने जीवनों के परिवर्तन में मेरी जिस उद्धार और मंगलकारी शक्ति का कार्य देखकर विस्मित होते हो, उसका यह सब आश्चर्यजनक कार्यों न होता ! क्या यह सच नहीं, कि तुम्हारे जीवनों में मेरी धर्म सम्बन्धी ज्योति और शक्ति के द्वारा जो शुभ परिवर्तन हुआ है, यह मेरे साथ जुड़ने से पहले तुम्हारे भीतर कोई उत्पन्न नहीं कर सका ? तुम्हारे मां बाप आदि सम्बन्धी नहीं कर सके, बिरादरी और सम्प्रदाय के लोग नहीं कर सके कोई धर्म ग्रन्य नहीं कर सका,कोई बड़े से बड़ा कल्पित उपास्य देवता भी नहीं कर सका।हां, और कोई भी नहीं कर सका ! फिर इस सत्य को सन्मुख रखकर तुम भलीभान्त समझ सकते हो, कि मेरा यह महा संग्राम

निष्फल नहीं गया, किन्तु उसके द्वारा वह महत् और शुभ फल उत्पन्न हुए हैं, कि जिन्हें देख २ कर मैं और तुम आज

के इस महा व्रत के शुभ अवसर पर एकत्र होकर, धन्य २ हो रहे हैं, इसीलिए जहां एक ओर मेरा यह महा संग्राम निराला है, वहां दूसरी ओर उसके द्वारा मैंने जो जय लाभ की है, वह भी निराली है । इस महा संग्राम में निश्चय सत्य और शुभ की जय हुई है । मेरा कष्ट सहना लाखों के लिए हित का मार्ग खोल देने का हेतु हुआ है । सैंकड़ों के भीतर श्रद्धा का सात्विक अंकुर उत्पन्न हुआ है । कितनों में कुछ न कुछ धर्म अनुराग जागा है कितने हि जन मेरे जीवन व्रत के लक्ष्य में कुछ न कुछ हां कई एक बहुत , सहायकारी हो रहे हैं। और इस सब के द्वारा अब तक जो कुछ हित और कल्याण आया है, और आगामी काल में आएगा, वह अनुमान से बाहर है । अतएव इस शुभ अवसर पर मेरे भिन्न तुम सब भी, निश्चय क्या बूढ़े, क्या प्रौढ़ क्या जवान, क्या स्त्री, क्या पुरुष, अपने २ जीवनों में और क्या समाज के विविध अंगों में इन नाना प्रकार के शुभ फलों को देखकर धन्य-२ अनुभव करने के बिना नहीं रह सकते ।

10-विज्ञान-मूलक धर्म तत्वों और साधनों का विकाश और प्रचार ।

सन् 1894 के आखरी दिनों में बहुत से आन्तरिक संग्राम के बाद मेरा ईश्वर विषय मिथ्या विश्वास चला गया। मेरे धर्म मत की ईश्वर विश्वास मूलक सारी बुनियाद नष्ट हो गई। सत्य ज्ञान के अनुसन्धान में अब अन्ध विश्वास का कुछ दख ल न रहा। विज्ञान विषयक अनुराग के सर्व्वांग रूप से विकशित हो जाने से सत्य ज्ञान के अनुसन्धान में **वैज्ञानिक विधि का मुझ पर पूर्ण अधिकार हो गया।** वैज्ञानिक **पूर्ण विधि** के अनुसार जो ज्ञान सत्य प्रमाणित हो, वही ग्रहणीय रह गया। प्राचीन या नवीन, प्रचलित या अप्रचलित आप्त या अनाप्त, स्वदेशीय या विदेशीय आदि के विचार से कोई बात **विश्वसनीय** न रही। किन्तु जो कुछ वैज्ञानिक पूर्ण विधि के द्वारा अनुमोदित और समर्थित हो, वही सत्य ज्ञान ग्रहणीय और उसी को दंडना और प्राप्त करना मेरा सार लक्ष्य बन गया।

"कल्पना मूलक विश्वास नहीं, किन्तु विज्ञान मूलक सत्य ज्ञान" मेरे हृदय का मन्त्र-जाप हो गया।अन्ध विश्वास के सब बन्धन टूट गए और इस समय मेरा आत्मा सत्यज्ञान में सदा उन्नत होने के योग्य बन गया। इस काल से लेकर मेरी धर्म शिक्षा की बुनियाद विश्व के अटल नियमों की अटल चटान पर स्थापित हो गई। इसी साल मेरे जीवनव्रत के १२ वर्ष पूरे हुए । मेरे यह बारह वर्ष बहुत सी बातों के विचार से बिलकुल निराले संग्राम में व्यतीत हुए—मेरी उमर के यह सब साल ईश्वर विश्वास मूलक धर्म प्रचार और अपने भान्त २ के अनुयाइयों के सम्बन्ध में नाना प्रकार के बहुत कुछ नए से नए तरबों के हासिल करने में खर्च हुए। तेरवें साल से मेरे जीवन के विश्वास में बिलकुल एक नया युग आरम्भ हुआ। तब से लेकर अब तक तेरह साल और भी चले गए हैं । इन तेरह सालों के निराले संग्रामों की अति विचित्र कहानी है, कि जो बहुत लम्बी होने के कारण इस अवसर पर बयान नहीं हो सकती। जीवनव्रत ग्रहण करने के अनन्तर बारह वर्ष तक मेरा ईश्वर विश्वास-मूलक और उसके अनन्तर तेरह वर्ष तक विज्ञानमूलक धर्म का साधन और प्रचार रहा है । यही पिछले तेरह साल हैं, कि जिनमें मैंने अपने आत्मा में जहां अपेक्षाकृत बहुत अधिक विकाश लाभ किया है, वहां देवसमाज ने भी बहुत आश्चर्यजनक उन्नति की है ।

आज के इस विशेष अवसर और शुभ दिन में मैं एक बार फिर उसी २० दिसम्बर को स्मरण करता हूं, कि जिस दिन आज से पच्चीस वर्ष पहले इसी शहर में मैंने अपना निराला जीवनव्रत ग्रहण किया था, और अपने इस निराले व्रत के उस निराले संग्राम को भी स्मरण करता हूं, जिसके भीतर से मैं आज तक गुजरा हूं, और मैं अपनी आयु के इस बहुत बड़े काल को सन्मुख लाकर इस समय जितना धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं, उसे मेरे भिन्न कोई और उपलब्ध नहीं कर सकता। मैं आज इस विशेष दिन में अपने आपको इस लिए बहुत विशेष और गहरे रूप से धन्य-२ और कृतार्थ अनुभव करता हूं, कि इस काल में

(१) मेरे आत्मा ने महा अद्भुत और अति विचित्र उच्च परिवर्तन अथवा विकाश लाभ किया है ।

(२) मेरे आत्मा में सत्य अनुराग विषयक नाना अंग विकशित हुए हैं।

(३) मेरे आत्मा में हित अनुराग विषयक नाना अंग विकशित हुए हैं।

(४) मेरे आत्मा में असत्य विषयक नाना अंगों के सम्बन्ध में नाना विराग शक्तियां पैदा हुई हैं ।

(५) मेरे आत्मा में अहित विषयक नाना अंगों के सम्बन्ध में नाना विराग शक्तियां उन्नत हुई हैं।

(६) मेरे आत्मा ने देवकोष के इन नाना अंगों में विकाश पाकर अपनी गठन में पूर्णता लाभ की है।

(७) मैंने पूर्णाग देवजीवन को प्राप्त होकर उसमें धर्म का वह पूर्णाग और सत्य रूप देखा और प्रगट किया है, कि जिसे मेरे भिन्न आज तक इस पृथिवी में किसी और आत्मा में नहीं देखा और नहीं प्रगट किया।

(८) मैंने सत्य और पूर्णाग धर्म जीवन की विज्ञानमलक वह सत्य आधार भूमि देखी और जाहर की है कि जिसे मेरे भिन्न आज तक इस पृथिवी में किसी और आत्मा ने नहीं देखा और नहीं जाहर किया।

(९) मैंने सत्य और पूर्णाग धर्म्म जीवन की प्राप्ति के सम्बन्ध में जिस सत्य साधन प्रणाली की शिक्षा दी है, वह आज तक मेरे भिन्न इस पृथिवी में और ने नहीं दी।

(१०) मैंने सत्य और पूर्णाग धर्म जीवन की शिक्षा के सम्बन्ध में जो देव शास्त्र रचा है, वैसा धर्मशास्त्र आज तक इस पृथिवी में किसी ईश्वर व मनुष्य ने नहीं रचा ।

(११) मैने सत्य और पूर्णाग धर्म के क्रमशः परिवर्तन के लिए जिस नमूने की निराली धर्म समाज स्थापन की है,वैसी समाज इस पृथिवी में और कहीं वर्तमान नहीं।

(१२) मैंने आत्मा की गठन और उसके जीवन के बन्ने और बिगड़ने के सम्बन्ध में जिन

नाना अमूल्य तत्वों को देखा और जाना है, उन्हें इस पृथिवी में किसी और ने नहीं देखा और नहीं जाना ।

(१३) मैंने ऐसे देश में जन्म लिया है, कि जिसकी, या यों कहो, कि एशिया के बहुत से देशों की सुख और स्वार्थ मूलक फिलासफीऔर उसके नाम से झूठे धर्म साधनों ने यहां के निवासियों को नाना हितकर बोधों में विकसित करने के स्थान में उन्हें विश्वगत नाना सम्बन्धों से काटकर उनके कितने हि अच्छे बोधों के नाश करने, और उन्हें अधिक से अधिक बोध शून्य और जड़वत् बनाने में सहाय की है और मैंने उसके ठीक विरुद्ध अपनी उच्च विकाश-मूलक और इसीलिए सत्य और विज्ञान-सम्मत फिलासफी के अनुसार उन्हें न केवल मनुष्यजगत् के नाना सम्बन्धियों के सम्बन्ध में, किन्तु उसके भिन्न पशु, उद्भिद् और भौतिक जगत् के सम्बन्धियों के साथ भी उनके गहरे सम्बन्ध को उपलब्ध कराने और इन सम्बन्धों में उच्च वा नीच गति के द्वारा आत्मा के बन्ने और बिगड़ने का सत्य ज्ञान देकर यहां के महा बेसुध आत्माओं को फिर से जाग्रत करने और उनमें नए से नए हितकर बोधों को उत्पन्न करके, उन्हें नाना प्रकार की नीचताओं से निकालने और नाना प्रकार से उच्च बनाने का महा सुन्दर और बांछनीय अधिकार लाभ किया है ।

(१४) मैंने क्या अपने देश और क्या पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की वह विज्ञान मूलक सत्य फिलासफी दी है, और उसके लिए धर्म का वह आदर्श और उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है , कि जिससे सब श्रेणियों और सब अवस्थाओं के अधिकारी लोग चाहे वह पुरुष हों या स्त्री, ग्रहण करके अपना २ सब प्रकार का कल्याण साधन कर सकते हैं ।

(१५) मैंने अपने देश और पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की विकाश तत्वमूलक वह सत्य और विज्ञानसम्मत फिलासफ़ी प्रगट की है, और उस के

लिए धर्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के लिए उस साधन प्रणाली को प्रकाश किया है, जिसे ग्रहण करने से जहां एक ओर वह अपने आत्मा की अधोगति, और ऐसी अधोगति-मूलक नाना दुःखों से अपनी रक्षा कर सकते हैं, वहां उच्च विकाश को प्राप्त होकर विद्या,विज्ञान,साहित्य,शिल्प और वाणिज्य आदि की उन्नति करके सच्ची सभ्यता में भी दिनों दिन उन्नत हो सकते हैं ।

(१६) मैंने अपने देश और पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की विकाश-तत्व मूलक व सत्य और विज्ञान-सम्मत फिलाशी प्रगट की है, और उसके लिए धर्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के लिए उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है, कि जिसके सत्यों को उपलब्ध और ग्रहण करके कल्पनामूलक सब प्रकार के मिथ्या मतों के महा हानिकारक जाल और मिथ्या मत सम्मत नाना महा हानिकारक कुसंस्कारों और गृह और सामाजिक अनुष्ठानों और साम्प्रदायिक विद्वेष और घृणा भावों से मुक्त होकर परस्पर के लिए उत्पीड़नकारी बन्ने के स्थान में परस्पर को शुभ दृष्टि से देखने, और परस्पर के शुभ में सहायकारी बन्ने के योग्य बन सकते हैं । और मनुष्य समाज के भिन्न पशु आदि जगतों के सम्बन्ध में भी मिथ्या धर्म मतों को अहितकारी शिक्षा से इस समय तक जो २ अत्याचार जारी है, और हानि हो रही है, उनसे भी उनकी रक्षा हो सकती है, और उनके लिए भी नाना प्रकार के हित का मार्ग खुल जाता।

11-धन्य २ और कृतार्थ बोध ।

इस सब महा दान के द्वारा आज तक मैं विश्वगत जिस २ जगत के सम्बन्ध में जहां तक और जो २ कुछ सत्य और शुभ लाने और फैलाने के योग्य हुआ हूं, जहां तक मैंने अपने इस परम लक्ष्य की पूति में सब प्रकार के भयानक से भयानक उत्पीड़न, अत्याचार, दुःख और हानियां सहके, अपने इस अद्वितीय मंत्र को, कि "सत्य शिव सुन्दर हि मेरा परम लक्ष्य होवे, जग के उपकार हि में, जीवन यह जावे" सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है जहां तक तुम्हारे और तुम्हारे परिवारों में से नाना प्रकार के कुसंस्कारों,पापों,

बुराइयों और हानिकारक प्रथाओं को नष्ट करके तुम सब को उनसे मुक्त करने के योग्य हुआ हूं-जहां तक तुम्हारे और तुम्हारे पारिवारिक जनों के हृदयों में शुभ परिवर्तन लाकर मैं तुम्हारे दुःखों को दूर करने, तुम में से कितनों को अकाल मृत्यु से बचाने , और तुम में पवित्रता, सद्भाव और शान्ति स्थापन करने के काबिल बना हूं तुम्हारे लिए देवसमाज और उसमें नाना हितकर इन्स्टीट्यूशन कायम करके तुम्हारी सन्तान और तुम्हारे अन्य सम्बन्धियों के हित और समृद्धि के साधन में कृतकार्य हुआ हूं-जहां तक तुम्हारे भिन्न और देवसमाज से बाहर नाना मनुष्यों के लिए नाना प्रकार का हित लाने वाला बना हूं जहां तक मनुष्य जगत् के भिन्न पशु

जगत् के हजारों जीवों के प्राण बचाने और उनके दुखों के कम करने और उचित सुखों के बड़ा देने का मुझे अधिकार मिला है जहां तक पशु जगत् के भिन्न उद्भिद् और भौतिक जगतों के सम्बन्ध में भी मुझे विविध प्रकार से सेवाकारी बन्ने का अवसर प्राप्त हुआ है, उस सब दान और सेवा को सन्मुख लाकर आज मैं निश्चय अपने आपको **अत्यन्त धन्य २ और कृतार्य अनुभव करता हूं।** इस समय मुझ से हित प्राप्त विश्व के सब जगत् मुझे प्रगट या गुप्त रूप से जो कुछ **शुभ आशीर्वाद** दे रहे हैं, मेरे **परलोक वासी** सम्बन्धी और अन्य **उपकृत** जन मेरे लिए जो आशीष प्रदान कर रहे हैं, उसे पाकर मेरे धन्य-२ अनुभव करने की कोई सीमा नहीं रहती। मेरे इस महा त्याग और जीवनव्रत की सफलता से इस समय तक जो कुछ इस लोक और परलोक में हित आया है, और आंयदा उसके आने के लिए जैसा सच्चा और प्रशस्त मार्ग खुल गया है, उसे सन्मुख लाकर मैं निश्चय अपने जीवन को जैसा सफल और उसके लिए धन्य २ और कृतार्य अनुभव करता और कर सकता हूं उसका प्रकाश करना मेरे लिए इस समय असम्भव है।

परन्तु आज मैं यहां कहां होता, और मेरा यह अद्वितीय जीवनव्रत भी कहां होता, और उसे यथा सम्भव सफल करके मैं अपने आपको कृतार्थ भी क्योंकर अनुभव करता, यदि

मेरे अस्तित्व के आविभव में, विश्व के विकाश क्रम में मेरे पूर्वजों का प्रकाश न होता। मैं आज इस विशेष शुभ दिन में अपने इन पूर्वजों की लड़ी में अपने **माता पिता और दादा दादी को विशेष रूप से धन्य-कहता हूं,** कि जिन का मेरे अस्तित्व में बहुत बड़ा हाथ है। मैं आज के इस शुभ अवसर पर, अपने **सद्गुरु** को विशेष रूप से धन्य २ कहता हूं, कि जो मुझे मेरी युवा अवस्था के संकटमय काल में मेरे लिए धर्म्मपथ में कुछ दिनों तक बहुत अमूल्य हितकारी और सहायक प्रमाणित होने और इस पृथिवी के त्याग करने के बाद भी मेरा मंगल चाहने और करने के भिन्न मेरे नाना सम्बन्धियों का भी नाना प्रकार का मंगल साधन करते रहे हैं। मैं आज के इस शुभ अवसर पर अपने उन नाना इस लोक और परलोक वासी सम्बन्धियों को भी धन्य २ कहता हूं, कि जिनके द्वारा मुझे एक वा दूसरे प्रकार की कोई सहाय वा सेवा प्राप्त हुई है। मैं इस शुभ अवसर पर अपने देश और विदेश के उन नाना जनों को भी धन्य २ कहता हूं, कि जिन से मैंने कभी कोई शारीरिक शुश्रूषा,वा सेवा वा आर्थिक सहाय,वा किसी प्रकार की मानसिक अवगति, वा विद्या, वा कोई उच्च भाव वर्द्धक प्रभाव लाभ किया है। मैं इस शुभ अवसर पर मनुष्य-जगत् के भिन्न उन दुग्ध प्रदाता और अन्य पशुओं,और नाना वृक्षों,और नाना पौदों को धन्य २ कहता हूं, कि जिन्होंने नाना प्रकार से मेरी सेवा की है । विशेष कर उद्भिद् जगत् ने प्रतिदिनदिन नाना प्रकार से मेरी जितनी सेवा की है,उसके लिए उसे जितना धन्य २ कहूं, वही कम है। मैं इस शुभ अवसर पर भौतिक जगत की अमूल्य सेवा को भी सन्मुख लाता हूं, कि जिसकी सेवा के बिना मेरा एक मुहर्त के लिए स्वास-प्रश्वास लेना तक सम्भव न था ।

मैं इस शुभ अवसर पर अपने विरोधियों को साधारण रूप से, और उनमें से कितने हि कृतघ्न जनों को विशेष रूप से स्मरण करता हूं और यद्यपि मैं उनके अहित कारी और कृतघ्न रूपों को सन्मुख लाकर उन पर मोहित तो नहीं हो सकता क्योंकि यह विश्व के विकाशकारी नियम के विरुद्ध है, परन्तु मैं हित अनुरागी होकर उनके हित के लिए

अवश्य कामना कर सकता हूं, कि जो मंगलकामना मैंने उनके लिए इससे पहले भी अनेक बार की है-इन कृतघ्न जनों में से प्रत्येक ने हि मुझ से और मेरी समाज से सम्बन्ध स्थापन करके अपने जीवन के कई पहलुओं में कई प्रकार की भलाई, और अपनी पहली बुरी अवस्था से निकल कर बेहतरी हासल की है। इनमें से हर एक का हि विविध प्रकार से उपकार हुआ है उनकी चिठियां, उनके लेख जो हमारे यहां मौजूद हैं, उनसे इस बात का भली भान्त प्रमाण मिल सकता है। उन्होंने भी अब तक पबलिक के सामने यह कहने की कभी दिलेरी नहीं की, कि **वह पहले अच्छे आदमी थे, और देवसमाज स्थापक** और देवसमाज के असरों में रहकर बुरे बन **गए ।** फिर क्या कारण है , कि यही लोग यहां से निकाले जाने पर अपने हित कर्ताओं को तरह २ की नापाक चालों से नुकसान पहुंचाने की कोशिशें करते हैं ? इसके जवाब में बताया जा सकता है, कि जिस देश में चारों तरफ़ ऐसे हजारों लोग मिलते हैं, कि जिनमें अपनी हि जाई हुई असहाय सन्तान को भी मार देना , और जहां २ जायज रहा है एक बेटा अपने मां बाप को, और एक २ सगा भाई अपने एक २ सगे भाई को तरह २ से सताता और क्लेश पहुंचाता है, और कभी २ यहां तक अधम बन जाता है, कि उनमें से किसी की हत्या तक कर देता है, उसमें यदि **धन वा वाहवा के लालच में पड़कर या उनके सिवाय द्वेष या ईर्षा के भाव से भरकर** मुझे वा किसी और को कोई कृतघ्न तरह २ के नुकसान पहुंचाने लिए के तैयार हो जाए, तो इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है ? परन्तु दुनिया का इतिहास बतता है कि उसीड़नकारियों के उत्पीड़न से केवल यही नहीं कि कोई शुभ काम उन्नति करने से रुक नहीं सकता, किन्तु अपेक्षाकृत और भी अधिक उन्नति करता है । और उसके सच्चे साथी ऐसी घटनाओं में, उसके लिए और भी अधिक आत्म त्याग करने के लिए इच्छुक बन जाते हैं, और पहले से अधिक उत्साह के साथ काम करते हैं। देवसमाज की लगातार उन्नति भी इसी सत्य को प्रमाणित करती है।

12-अन्तिम अपील और शुभ कामना ।

तब मेरा यह अस्तित्व नेचर के लाखों वर्ष के जिस महा संग्राम का फल है। और इस अस्तित्व के द्वारा मैंने खुद अद्वितीय संग्राम करके, अपने जिस अद्वितीय परम लक्ष्य को आज तक पूरा किया है, उसकी महिमा को जहां तक तुम उपलब्ध कर सकते हो, उसे आज के इस विशेष दिन में उपलब्ध करो। और जिस सब प्रकार से कल्याणकारी पूर्णाग और सत्य धर्म के अलौकिक ज्ञान और प्राप्ति का मैंने तुम्हारे लिए अतुल्य और अमूल्य भंडार खोल दिया है, उससे लाभ उठाने से यथा साध्य उदासीन और वंचित न रहो। इसके लाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं है। आत्मा वा जीवन से बढ़कर और कोई चीज मूल्यवान् नहीं है । एक यही धर्म धन हि ऐसा है, कि जिसको लाभ करके तुम उसे सदा अपने पास रख सकते हो, और उसमें विकशित होकर उच्च से उच्च लोकों में प्रवेश कर सकते हो, और अपनी आन्तरिक प्रकृति अथवा अपनी विनाश- कारी गतियों और उनके नाना प्रकार के महा हनिकारक दुःखों से मोक्ष लाभ कर सकते हो। और मृत्यु के उपस्थित होने पर पूर्ण शान्ति और तसल्ली के साथ कूच कर सकते हो। और इस महा अधोगति-प्राप्त देश के उभारने में मिसल खमीर के काम दे सकते हो । और उसकी सबसे श्रेष्ट सेवा कर सकते हो। याद रखो कि ऐसे सत्य और
पूर्णाग धर्म और उसके प्रकाशक और विकाशक के जाने और लाभ करने से बढ़कर क्या तुम्हारे, और क्या किसी और योग्य मनुष्य के लिए कोई और अधिकार नहीं और कोई और लाभ नहीं। और जो देवसमाज इसी धर्म के साधन और प्रचार के लिए स्थापन हुई है, जिसने मेरे खून से आज तक इतना परवरिश पाई और उन्नति की है, उससे बढ़कर तुम्हारे और मनुष्य मात्र के लिए कोई और हितकर और उन्नति दायक समाज नहीं। इसलिए उसमें प्रवेश करना, और उसमें रहना, अपना बहुत बड़ा अधिकार जानो और आज के इस विशेष दिन में अपने ऐसे अधिकार को विशेष रुप से सन्मुख लाकर यह जोरदार आकांक्षा करो, कि तुम्हारा आत्मा विनष्ट न हो, तुम्हें धर्म जीवन की प्राप्ति हो, और तुम्हे इस सर्व्वोच्च लक्ष्य की सफलता के लिए अपनी जिन २ वासनाओं,

उत्तेजनाओं, और अहं कोष मूलक नाना शक्तियों के महा हानिकारक और विनाशकारी पंजे से निकलने की आवश्यकता है, उनसे उद्धार पाने के लिए एक वीर पुरुष की तरह दृढ़ प्रतिज्ञा करो, और तुम्हे जिस देवगुरु और देव समाज के साथ सम्बन्ध स्थापन करने का अति पवित्र और श्रेष्ठ अधिकार मिला है, उनके साथ वफादार रहकर उनके कार्य की सफलता और उन्नति के लिए जहां तक सम्भव हो, अपने तन, अपने धन, अपनी धरती, और अपने मन आदि को समर्पण करने में केवल यही नही, कि कोई संकोच न करो, किन्तु ऐसा करने में हमेशा पूर्ण उत्साह और पूर्ण हर्ष प्रकाश करो, और औरों को भी यही शिक्षा दो, कि देव समाज में सब प्रकार के दान करने की जितनी महानता और जितनी सफलता है, वह और किसी प्रकार से नही।

ऐसा हो, कि यह महोत्सव हम सब के लिए विशेष महोत्सव हो, ऐसा हो, कि यह विशेष महोत्सव देवधर्म के प्रचार, और देव समाज की उन्नति के पथ में विशेष रुप से सहायकारी और एक नए युग का उत्पादक हो, इस आशीर्वाद के साथ मैं अपनी इस ऐड्रेस को अब समाप्त करता हूं।